एक बार फिर: स्त्रियाँ चुप रहें और अधीन रहें

मुझे 1 कुरिन्थियों 14:34-35 के इस छोटे से पाठ को एक बार फिर उठाने के लिए क्या प्रेरित करता है? यह कि मैं (बहुत से दूसरे लोगों की तरह) इन दोनों पदों को गंभीरता से लेता हूँ। फिर भी बहुत से प्रश्न खड़े हैं, पाठ-आलोचना से जुड़े प्रश्न भी और धर्मवैज्ञानिक प्रश्न भी। इसके साथ इन दोनों पदों का इतिहास में पड़ा अपार प्रभाव भी जुड़ा है। मैं स्वयं अपने लिए इस विषय को एक बार फिर हाथ में लेता हूँ, ताकि किसी भ्रम के पीछे न चल पड़ूँ; मैं विचारों को इकट्ठा करता हूँ और उन पर एक बार फिर सोचता हूँ।

यह लेख छपने के लिए तैयार कोई शोध-पत्र नहीं है, बल्कि काम करने और चर्चा करने का एक आधार है। यह इन पदों से संबंधित सामग्री को इकट्ठा करता है और इसमें बहुत से उद्धरण हैं, जिनमें से अधिकतर अंग्रेज़ी से अनुवादित हैं। Logos प्रोग्राम, इंटरनेट के अनेक पृष्ठों और उत्कृष्ट अनुवाद-प्रोग्राम www.deepl.com ने इस काम की मेहनत को सीमित रखा। अक्टूबर 2026 में इस पाठ को दोबारा देखा और सुधारा गया।

संक्षिप्त भूमिका और मूल पाठ

आज भी ऐसे प्रचारक, शिक्षक और अगुवे हैं जो स्त्रियों के चुप रहने के बारे में पौलुस के वचन को पूर्ण और बिना किसी अपवाद के मानते हैं: आराधना सभा में प्रचार/उपदेश, शिक्षा और प्रार्थना में कोई भागीदारी नहीं। यदि कोई चाहे, तो इसे ऐसे भी समझा जा सकता है। विशेषकर ब्रदरन आंदोलन के दायरों में, दाएँ से लेकर बाएँ छोर तक, बहुत सी बहनें इसे स्वीकार कर लेती हैं। कभी-कभी, शायद जितना सोचा जाता है उससे भी अधिक बार, भीतर के प्रश्नों और संदेहों के बावजूद।

इस तरह यह एक दूरगामी, स्पष्ट-निरपेक्ष और जीवन को बहुत गहराई से ढालने वाली ईश्वरीय आज्ञा होती। यदि कोई इसे इस तरह पढ़ता या समझता और व्यवहार में लाता है, तो इससे यह पता चलता है कि वह बाइबल को कैसे पढ़ता है। इस अध्ययन में मैं यह मानकर चलता हूँ कि बाइबल परमेश्वर का अधिकारपूर्ण वचन है। परन्तु तब भी यह प्रश्न बना रहता है कि हमें उसकी – विशेषकर कठिन पाठों की – व्याख्या कैसे करनी चाहिए, कैसे कर सकते हैं, या कैसे नहीं करनी चाहिए।

इस लेख में मैं इसी प्रश्न की खोज करता हूँ। मैं कुछ व्याख्या-विशेषज्ञों, भाषा-विशेषज्ञों और धर्मवैज्ञानिकों या बाइबल-शिक्षकों और उनके स्पष्टीकरणों को एक साथ रखता हूँ और उन्हें उद्धृत करता हूँ। मैं इन व्याख्याओं पर अपनी टिप्पणी देने की छूट लेता हूँ। सब व्याख्याकारों पर और मुझ पर भी परमेश्वर के सामने यह लागू होता है कि हम भूल कर सकते हैं और हमारा ज्ञान अधूरा है। फिर भी, सारी अपेक्षित नम्रता और निष्पक्षता के बावजूद, यह प्रश्न स्पष्ट है और इसका उत्तर खुला नहीं है। केवल हाँ या ना है। पूर्ण मौन, हाँ या ना? बोलना, हाँ या ना? यह प्रश्न आज भी इतना महत्वपूर्ण है कि इस पर एक बार फिर विचार किए बिना नहीं रहा जा सकता। तब भी, जब बहुत सी बहनें चुप रहने वाली भूमिका से संतुष्ट हैं और भाइयों की तरह सोचती हैं कि इस प्रकार वे बाइबल के प्रति निष्ठावान हैं। ऐसी कलीसियाओं की आराधना सभाएँ चलती भी तो हैं। बहनों के बोले बिना भी काम चल जाता है, और बहुत समय से ऐसे ही चलता आया है। परन्तु इस प्रथा के सही होने के प्रश्न के लिए इसका कोई महत्व नहीं है। यहाँ व्यावहारिक परिणामों और प्रभावों की बात भी नहीं होगी, यद्यपि वह एक अत्यंत रोचक विषय होता।

अब वह पाठ आता है जिसकी बात हो रही है, संदर्भ के कारण पद 31 से:

1 कुरिन्थियों 14:31-40, एल्बरफ़ेल्डर (Elberfelder) अनुवाद (जर्मन बाइबल अनुवाद), CSV संस्करण के अनुसार; यहाँ जर्मन से अनुवादित

31 क्योंकि तुम सब एक-एक करके भविष्यद्वाणी कर सकते हो, ताकि सब सीखें और सब को शान्ति मिले। 32 और भविष्यद्वक्ताओं की आत्माएँ भविष्यद्वक्ताओं के अधीन रहती हैं। 33 क्योंकि परमेश्वर अव्यवस्था का नहीं, परन्तु शान्ति का परमेश्वर है, जैसा पवित्र लोगों की सब सभाओं में है।

34 स्त्रियाँ सभाओं में चुप रहें, क्योंकि उन्हें बोलने की अनुमति नहीं है,

परन्तु वे अधीन रहें, जैसा व्यवस्था भी कहती है।

35 परन्तु यदि वे कुछ सीखना चाहें, तो घर पर अपने-अपने पति से पूछें;

क्योंकि स्त्री का सभा में बोलना लज्जा की बात है।

36 या क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है? या क्या वह केवल तुम्हीं तक पहुँचा है? 37 यदि कोई समझता है कि वह भविष्यद्वक्ता है या आत्मिक है, तो वह पहचान ले कि जो मैं तुम्हें लिखता हूँ, वह प्रभु की आज्ञा है। 38 परन्तु यदि कोई अनजान है, तो अनजान ही रहे। 39 इसलिए, मेरे भाइयो, भविष्यद्वाणी करने की लालसा रखो, और अन्य भाषाओं में बोलने से मना न करो। 40 पर सब कुछ शालीनता से और क्रम से हो।

आदेश: आराधना सभाओं में स्त्रियों को चुप रहना है।

कारण: (1) उन्हें बोलने की अनुमति नहीं है;

(2) परन्तु वे अधीन रहें, जैसा व्यवस्था कहती है।

नियम: यदि वे सीखना चाहें, तो घर पर अपने-अपने पति से पूछें।

औचित्य: स्त्री का सभा में बोलना लज्जा की बात है।

बुद्धि को दरवाज़े पर छोड़कर न आएँ

बहुत से भाई, जो पूर्ण मौन की आज्ञा का समर्थन करते हैं, मसीही विश्वास का बचाव इस रूप में करते हैं कि वह कोई तर्कहीन बात नहीं है, विज्ञान-विरोधी नहीं है। दूसरे शब्दों में, कोई सृष्टिकर्ता और सृष्टि पर, या पुनरुत्थान और आश्चर्यकर्मों पर विश्वास कर सकता है, बिना अपनी बुद्धि को बंद किए। इस मत से मैं पूरी तरह सहमत हूँ।

परन्तु यही दृष्टिकोण बाइबल पढ़ने और बाइबल को समझने पर भी उतना ही लागू होता है। तब मुझे बाइबल के पाठों का अध्ययन भी उतनी ही बारीकी से और साथ ही परिणाम के प्रति खुले मन से करना होगा। विशेषकर तब, जब कलीसिया के व्यावहारिक जीवन पर दूरगामी परिणामों की बात हो। पहले ही यह कह दूँ: इस वचन की विषय-वस्तु की आलोचना करना उचित नहीं है, क्योंकि मैं नए नियम को भी पुराने नियम की तरह परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया, परमेश्वर द्वारा श्वासित परमेश्वर का वचन मानता हूँ।

इसलिए मैं इस अत्यंत विवादित और कई दशकों से गरमागरम चर्चा में रहे पाठ के पास एक बार फिर आता हूँ। यह कि मैं स्वयं बहुत सी पूर्व-धारणाएँ, ज्ञान और अज्ञान तथा अपने संस्कार साथ लेकर आता हूँ, इसे मैं बदल नहीं

सकता। फिर भी मैं बस अपनी पूरी समझ और विवेक के अनुसार, पवित्र आत्मा की सहायता से और अपनी (प्रकाशित) बुद्धि से इन दोनों पदों को समझने का प्रयास करता हूँ।

मैं इस हर आरोप को अस्वीकार करता हूँ कि मैं नारीवाद से प्रभावित या उसके द्वारा बहकाया गया हूँ। दुर्भाग्य से यह उन सब भाइयों और बहनों का मंत्र की तरह दोहराया जाने वाला, घिसा-पिटा आरोप है जो ज़ोर देकर मौन की आज्ञा पर अड़े रहते हैं, जब कोई किसी दूसरी या बिलकुल उलटी समझ पर पहुँचता है। उनका दृष्टिकोण और उनकी सलाह यह है: पाठ सरल, स्पष्ट और असंदिग्ध है और उसे गलत समझा ही नहीं जा सकता। बस उसका पालन करना है।

तो चलिए, एक बार ऐसा ही करके देखते हैं। जब मैं 1 कुरिन्थियों की पत्री पढ़ता हूँ, तो जैसा सब जानते हैं, अध्याय 11:5 में यह कथन आता है कि एक स्त्री प्रार्थना करती है और भविष्यद्वाणी करती है। यहाँ मुझे केवल काल्पनिक रूप से यह समझ रखने की छूट दी जाए – आख़िर मैंने अध्याय 14 अभी पढ़ा ही नहीं है – कि स्त्री यह हर जगह करती है: कलीसिया में, मित्रों के बीच या परिवार में। फिर मैं अध्याय 14 पढ़ता हूँ, जिसमें पौलुस बार-बार ज़ोर देता है: सब, अर्थात पुरुष और स्त्रियाँ, भाग ले सकते हैं और लें भी। वह "भाइयों" शब्द और पुल्लिंग सर्वनामों का प्रयोग तो करता है, परन्तु इस पर आम सहमति है कि अधिकतर दोनों लिंग अभिप्रेत हैं। सामान्य (जेनेरिक) पुल्लिंग के समान या पूरी तरह उसी अर्थ में। ऐसा हमेशा नहीं, पर अक्सर होता है। अतः पद 33 तक आराधना सभा में लिंग के संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं है। फिर पद 34 और 35 आते हैं, जो – कम से कम पहली दृष्टि में – बहनों की भागीदारी को पूरी तरह से बाहर कर देते हैं।

उन्हें बोलने की अनुमति नहीं है! एक ऐसा कथन जो किसी पहले से मौजूद आज्ञा या किसी परंपरा का सहारा लेता हुआ लगता है। ऐसा नहीं हो सकता कि पौलुस ही पहला हो जो ऐसी बात का उल्लेख करता है या उसकी माँग करता है। उससे बहुत पहले प्रेरित थे, और यीशु मसीह भी। परन्तु नए नियम में कहीं भी, बिलकुल कहीं भी ऐसी आज्ञा का संकेत तक नहीं मिलता। न कोई स्पष्ट आज्ञा, न कोई ऐसी परिस्थिति जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके। यहाँ पहला प्रश्नचिह्न लगाया जा सकता है।

जब सब स्त्रियों को चुप रहना है, तो इसे अपवाद कहना ठीक नहीं बैठता: उपस्थित लोगों में से आधे लोग हैं जिन्हें कुछ नहीं कहना है। इसे अपवाद कहना बल्कि एक शांत करने वाली, घुमावदार अभिव्यक्ति है, जो बिलकुल अनुपयुक्त या असंगत है। अपवाद उपस्थित लोगों के 50 % पर लागू नहीं होते, बल्कि शायद 10 % पर।

अब कारण बताया जाना शुरू होता है: स्त्रियाँ अधीन रहें, जैसा व्यवस्था भी कहती है। अर्थात अधीनता को चुप रहने के बराबर रखा गया है। अधीनता, जैसा सब जानते हैं, एक मसीही सद्गुण है। क्या तर्क के नियमों के अनुसार इसका अर्थ यह है कि जो पुरुष आराधना में कुछ कहते हैं, वे अधीन नहीं रहते, या इसके विपरीत, वे घमंड करते हैं? या दूसरे ढंग से पूछें: जब कोई बहन अधीनता की नम्र मनोवृत्ति में, जो निश्चय ही दिखाई देती है, शायद किसी भाई के कहने पर भी, कुछ कहती है (प्रार्थना, पवित्रशास्त्र-पाठ, भविष्यद्वाणी का वचन), तो वह अधीनता की आत्मा में कैसे नहीं हो सकता? सरल, शांत भागीदारी, शायद किसी प्रश्न का उत्तर मात्र, अधीनता का उलटा नहीं है। इसलिए चुप रहने को अधीनता के बराबर ठहराना विश्वसनीय नहीं है। कम से कम अब कोई दूसरी बार ठिठक जाता है और अनुमान लगा सकता है कि यहाँ कोई विशेष समस्या है। स्त्रियाँ किसी न किसी तरह अधीनता की मनोवृत्ति में व्यवहार नहीं कर रहीं।

यह अधीनता व्यवस्था द्वारा माँगी गई है। नीचे बहुत सी टीकाएँ आएँगी, जिनसे पता चलता है कि सबसे अच्छे व्याख्या-विशेषज्ञ भी नहीं जानते कि कौन सी व्यवस्था अभिप्रेत हो सकती है। पूरे पुराने नियम को मिलाकर देखें तो

उसमें अधीनता की ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। न कोई ठोस व्यवस्था, न कोई ऐसी जो पुराने नियम का सामान्य स्वर हो।

यह पाठ सरल नहीं है। इसका एक संदर्भ भी है, एक ऐतिहासिक, ठोस और विशेष परिस्थिति, जिसमें ये पद बोलते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी कि पाने वाले भली-भाँति ठीक-ठीक जानते थे कि क्या अभिप्रेत है। इस मामले में हम आज यह नहीं जानते! हमें इसका पुनर्निर्माण करना होगा, संभावित स्पष्टीकरण विकसित करने का प्रयास करना होगा, जो इस ठोस पाठ से आगे बढ़कर अनिवार्य रूप से नए नियम की पूरी शिक्षा के ढाँचे में भी बैठते हों।

अब स्त्रियों के चुप रहने का कारण आगे बढ़ता है: परन्तु यदि वे कुछ सीखना चाहें, तो घर पर अपने-अपने पति से पूछें। तो क्या बात स्त्रियों के लिए किसी कठोर मौन की आज्ञा की है ही नहीं? क्या बात सीखने की समस्या की, या अज्ञान की है? यदि उन्हें घर पर पूछना है, तो क्या वे यह सभा में करती थीं? जो पाठ के तर्क का अनुसरण करता है, वह अब पूर्ण मौन की आज्ञा की बात नहीं कर सकता। क्या स्त्रियों ने – शायद सब स्त्रियों ने नहीं, केवल कुछ ने, क्योंकि सब का अपना पति नहीं होता या सब विवाहित नहीं होतीं – हर उस पुरुष से प्रश्न किए जिसने सभा में कुछ कहा? और इस प्रकार एक तरह की अराजकता पैदा कर दी? या केवल बेचैनी और असुविधा? क्या उन्होंने उकसाने वाले ढंग से, बहुत ज़ोर देकर और हठपूर्वक पूछा, या आलोचना करते हुए?

क्या सभा वह स्थान नहीं है जहाँ हम आज तक सीख सकते हैं और हमें सीखना भी चाहिए, स्त्रियाँ भी और पुरुष भी? और यदि प्रश्न आगे बढ़ने में सहायता करते हैं, और अधिकतर वे करते हैं, तो वे आराधना का हिस्सा हो सकते हैं और होने भी चाहिए। एक प्रचारक कलीसिया को प्रश्न पूछने के लिए आमंत्रित कर सकता है; बात किसी सुंदर उपदेश की नहीं है, बल्कि इसकी है कि लोगों तक क्या पहुँचता है और क्या समझा जाता है। क्या ऐसा हो सकता है कि पद 31 में पौलुस की चिंता यह है कि सब सीखें? पहली शताब्दी में कलीसिया, या आराधना सभा, वह स्थान थी जहाँ सीखा जाता था – हमारे आज के सुव्यवस्थित कलीसियाई जीवन से भिन्न। और कहाँ? और सीखने में प्रश्न पूछना भी शामिल है, निश्चय ही उचित ढंग से। और अब पौलुस तुरंत फिर से स्त्रियों को प्रश्न पूछने से मना करे और निर्देश दे कि वे यह केवल घर पर, अपने पतियों से करें? कलीसिया के बजाय घर पर सीखना? यहाँ कुछ मेल नहीं खाता। और मार्था और मरियम का क्या? यीशु की उपस्थिति में उसके चरणों में बैठकर सीखने को तो अक्सर आदर्श मानकर लगभग रूमानी बना दिया जाता है – तो कृपया इसे कलीसिया के लिए भी लागू होने दीजिए। सीखना, और संयम से तथा सीखने की इच्छा के साथ धीमे से एक प्रश्न पूछना – इस पर यीशु क्या कहते? चुप रहो!?

अब इस विषय को समाप्त करने के लिए यह कहा जाता है: क्योंकि स्त्री का सभा में बोलना लज्जा की बात है। विचारों के इस क्रम में यह बैठता है कि बोलने को कुछ स्त्रियों के अशोभनीय प्रश्न-पर-प्रश्न पूछने के रूप में समझा जाए। ऐसा व्यवहार लज्जाजनक या अप्रतिष्ठित है। परन्तु किसके लिए? क्या इसका अर्थ पुराने नियम की घृणित बातों के समान है? क्या यह परमेश्वर के लिए/परमेश्वर के सामने लज्जा की बात है, या यह उस लज्जा-और-सम्मान की संस्कृति में शालीन नहीं है, जिसे हम प्राचीन भूमध्यसागरीय क्षेत्र से जानते हैं और जो आज भी पृथ्वी के कुछ देशों में या देशों की सीमाओं के पार फैली संस्कृतियों में पाई जाती है? तो क्या लज्जा को सांस्कृतिक रूप से समझना चाहिए? क्योंकि स्त्रियाँ अपने पतियों के सम्मान का ध्यान नहीं रखतीं – बाहर के उन लोगों के सामने भी, जो स्पष्ट रूप से उपस्थित हैं और इसे लज्जा की बात समझते?

यहाँ तक इतना ही, उन धारणाओं के विरुद्ध आपत्ति के रूप में, जो इस पाठ को सरल बना देती हैं और उसमें से पूर्ण मौन की आज्ञा/बोलने पर प्रतिबंध निकाल लेती हैं और इस प्रकार, मेरी समझ में, बुद्धि को दरवाज़े पर छोड़

आती हैं। इन पदों का एक विश्वसनीय अर्थ खोजने में कम से कम निम्नलिखित बातें खुली हैं:

- क्या चुप रहने को पूर्ण अर्थ में समझना चाहिए?
- क्या बात कुरिन्थुस की सभाओं की है, अर्थात वहाँ की घरेलू सभाओं की, या संसार भर की सब सभाओं की, जिनमें ऐसा किया जाता है?
- क्या पौलुस से पहले भी यही प्रचलित रीति थी – या वह किस बात का सहारा लेता है?
- क्या साधारण रूप से चुप रहना अधीनता के बराबर है?
- कौन सी अधिकारपूर्ण व्यवस्था अभिप्रेत है, जिसका पौलुस सहारा लेता है?
- उस लज्जा से क्या अभिप्राय है, जो तब होती है जब कोई बहन भाग लेती है?
- इसके अतिरिक्त: क्या ये दोनों पद शायद एक उद्धरण हैं, जिसे पौलुस इसलिए प्रस्तुत करता है ताकि ठीक इसी माँग का खंडन करे कि स्त्रियाँ चुप रहें?
- इसके अतिरिक्त: वास्तव में यह संदेह भी बना हुआ है कि ये पद बाद में जोड़े गए।

मैं इन पदों को कैसे समझूँगा, या किस व्याख्याकार से सहमत हो सकता हूँ, इसके बारे में और अधिक इस पूरे लेख के अंत में। क्योंकि अब पहले टीकाओं के बीच से एक यात्रा आती है – धर्मवैज्ञानिकों की, बाइबल के प्रति निष्ठावान व्याख्याकारों की टीकाएँ, स्त्रियों के चुप रहने के बारे में इस पाठ पर।

ब्रदरन आंदोलन की व्याख्याएँ

आगे कुछ ऐसे पाठ आते हैं जो मुझे उपलब्ध थे। इन लेखकों के और भी पाठ होंगे, परन्तु उद्धृत पाठ एक अच्छा सामान्य परिचय देते हैं।

जे. एन. डार्बी (J. N. Darby)

Notes of Readings on the Epistles to the Corinthians

पद 34 व्यवस्था का सामान्य स्वर है, यदि कोई विशेष व्यवस्था न भी हो। प्रेरित इस संबंध में तीमुथियुस के यहाँ बिलकुल स्पष्ट है। वह कहता है, "मैं स्त्री को शिक्षा देने की अनुमति नहीं देता।" मेरे विचार में यह थोड़ा अनुचित है कि कोई स्त्री कोई गीत भी आरंभ करे; परन्तु यदि वह इसे नम्रता से करे, तो मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं। यदि तीन स्त्रियाँ किसी सुनसान द्वीप पर हों, तो मैं नहीं जानता कि वे मिलकर रोटी क्यों न तोड़ें, यदि वे इसे निजी रूप से करें। यदि कोई पुरुष और उसकी पत्नी अकेले हों, तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं दिखती कि वे रोटी तोड़ें, यदि वे स्वयं को स्वतंत्र अनुभव करें और इसके लिए तैयार हों। (J. N. Darby, Collected Writings, Expository)

HJR की टिप्पणी: यह कौन सी व्यवस्था है, यह खुला रह जाता है। बाइबल के विशेष ज्ञाता होने के नाते उन्होंने कम से कम कोई सुझाव तो दिया ही होता। ऐसा लगता है कि वे भी इसे नहीं जानते।

मैं यह स्वीकार नहीं करता कि कोई स्त्री सुसमाचार प्रचार करने के लिए बाहर जाए। मैंने आज तक ऐसी कोई स्त्री नहीं देखी जिसने शिक्षा और कलीसिया के मामलों में दख़ल दिया हो और अपने ऊपर और बाकी सब पर विपत्ति न लाई हो। यदि वह किसी समूह के सामने उसे शिक्षा देने के लिए बैठती है, तो उसने अपना स्थान पूरी तरह छोड़ दिया है। हम त्रूफैना और त्रूफोसा के बारे में पढ़ते हैं, जो प्रभु में परिश्रम करती थीं, और प्रिय पिरसिस के बारे में भी

– हर एक सेवा में अपने-अपने स्थान पर। सुसमाचारों में स्त्रियों को पूरा सम्मान दिया गया है; परन्तु प्रभु ने कभी किसी स्त्री को प्रचार करने के लिए नहीं भेजा; और न कभी कोई पुरुष मसीह के गाड़े जाने के लिए उसका अभिषेक करने गया। स्त्रियों की भविष्यद्वाणी कोई उपदेश नहीं थी। एक प्रेरित शिक्षा थी, जिसके विषय में वे बोलती थीं। मेरा विश्वास है कि उन्होंने यह असाधारण रीति से किया, फिलिप्पुस की बेटियों की तरह। स्त्रियों का उपयोग किया जा सकता है, जैसे मरियम मगदलीनी को मसीह ने अपने चेलों के पास भेजा। यदि मसीह किसी स्त्री को कोई संदेश पहुँचाने के लिए भेजता, तो वह सबसे अच्छा यही कर सकती थी कि जाकर उसे पहुँचा दे। वह केवल एक संदेश था; वह शिक्षा देने का स्थान नहीं है; संदेश चाहे जो भी हो, वह केवल एक संदेश है। मान लीजिए कि वह लिखा गया होता और कोई विशेष निर्देश होता, तब शिक्षा संदेश में होती, न कि मरियम मगदलीनी के स्थान में। पवित्रशास्त्र कहता है: "मैं स्त्री को शिक्षा देने की अनुमति नहीं देता।" उसे बिलकुल भी शिक्षा नहीं देनी चाहिए। वह उन लोगों का मार्गदर्शन कर सकती है जिन्होंने मन फिराया है, बिना स्वयं को शिक्षिका के रूप में प्रस्तुत किए। शिक्षा देने का अर्थ है उन लोगों तक निश्चित शिक्षाएँ पहुँचाना जो अपने अधीन हैं।

HJR की टिप्पणी: डार्बी भली-भाँति देखते हैं कि यीशु स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार करता था, और यह भी कि पौलुस (Paulus) परमेश्वर के राज्य की सेवा में उन्हें अपनी बराबर की सहकर्मी मानता है (रोमियों 16:12)। यह कि "प्रभु में परिश्रम करना" प्रचार का अर्थ भी रख सकता है, और कुछ मामलों में अवश्य रखता है, इसका यहाँ उल्लेख होना चाहिए। परन्तु डार्बी हर बात के ऊपर 1 तीमुथियुस 2:12 का यह एक पद रख देते हैं, जो शिक्षा देने को मना करता है, और जिसकी व्याख्या वे सब पर लागू होने वाली आज्ञा के रूप में करते हैं। यह कि इस आदेश वाला केवल यही एक पद है, और यह कि वह बिलकुल भी सब पर लागू नहीं होता, बल्कि इफिसुस की एक विशेष स्त्री पर, जो गलत शिक्षा देती थी और वह भी एक अनुचित, अधिकार जताने वाले ढंग से – इसकी चर्चा ही नहीं होती, और जहाँ तक मैं जानता हूँ, यह विचार उनके लेखों में भी कहीं नहीं आता। इस पर बस प्रश्न ही नहीं उठाया गया कि क्या उसका अर्थ सचमुच इतना सामान्य हो सकता है।

डार्बी और उनके समकालीन अपने समय की संतान थे, जैसे हम भी हैं। क्या उनका समय बेहतर था? उनका समय भी युग की भावना (ज़माने के चलन) से ढला हुआ था, जो स्त्रियों को समाज में और कलीसिया में तो वैसे भी एक अधीन भूमिका देता था – मतदान का अधिकार नहीं, सार्वजनिक भाषण नहीं, आदि। आज यह भिन्न है, और यह हमारी सोच को भी उतना ही प्रभावित करता है। इसमें ध्यान रखने की बात यह है: हर युग की भावना बाइबल की दृष्टि से आंशिक रूप से गलत, बहकाने वाली और ख़तरनाक हो सकती है, चाहे 200 वर्ष पहले की हो या आज की।

यीशु ने स्त्रियों को प्रचार करने के लिए नहीं भेजा – सिवाय उस महान आज्ञा (मिशन की आज्ञा) के, जो तो हर मसीही पर लागू होती है? उसके अलावा मेरी समझ में प्रचार करने की यीशु की कोई आज्ञा मुश्किल से ही है, यदि है भी – बारहों और सत्तर को भेजने को छोड़कर (लूका 9:2; 10:1-9) –, जिससे स्त्रियों के प्रचार करने के विरुद्ध यह तर्क कुछ हवा में से गढ़ा हुआ लगता है।

विलियम केली (William Kelly)

1 कुरिन्थियों की व्याख्या

यह नियम बहुत महत्व का है। स्त्रियों को सभाओं में बोलने से मना किया गया है। जो लोग वाद-विवाद पसंद करते हैं, वे यह मान सकते थे कि यदि कहीं उन्हें इसकी अनुमति हो सकती थी, तो वहीं। वह पवित्र वातावरण, जिसमें मनुष्य कुछ भी नहीं जैसा है, जिसमें परमेश्वर आत्मिक रीति से अपनी उपस्थिति और सामर्थ्य प्रकट करता है, पवित्र

स्त्रियों के लिए एक उपयुक्त स्थान हो सकता था, जिनके पास निस्संदेह वरदान हैं, यहाँ तक कि भविष्यद्वाणी का भी, जैसे सुसमाचार प्रचारक फिलिप्पुस की चार बेटियाँ। (प्रेरितों के काम 21:9।) परन्तु नहीं; प्रेरित को प्रेरणा मिली कि वह सभाओं में इसे मना करे, निस्संदेह पूर्ण रूप से नहीं, क्योंकि हर वरदान का उपयोग होना चाहिए, परन्तु उसका ढंग प्रभु के निर्देश के अधीन होना चाहिए। पुराने नियम में ईश्वरीय प्रकाशन ने स्त्री की सामान्य अधीनता का स्पष्ट संकेत दिया; जहाँ तक सभाओं का संबंध है, नया नियम भी कम स्पष्ट नहीं है। यह विचार कि वे सुसमाचार के प्रचार में आगे आ सकती हैं, उस समय किसी के मन में नहीं आया। वह स्त्रियोचित शालीनता का ऐसा उल्लंघन था जिससे अन्यजाति भी चौंक जाते। यह सर्वोत्तम के बिगड़ने, नवीनता की भावना और आधुनिक मसीही जगत की रीतियों के लिए सुरक्षित रखा गया था। प्रेरित ने उन्हें इन सार्वजनिक अवसरों पर एक प्रश्न तक पूछने से मना किया। यदि वे कुछ जानना चाहती थीं, तो उन्हें घर पर अपने-अपने पति से पूछना था, क्योंकि स्त्री का सभा में बोलना लज्जा की बात है। ...

पूरा विषय इस प्रश्न के साथ समाप्त होता है कि क्या परमेश्वर का वचन उनमें से निकला था या केवल उन तक पहुँचा था। कुरिन्थी पहले थे जो हर जगह लागू होने वाले प्रेरितिक क्रम से हट गए। यह कलीसियाई विद्रोह की शुरुआत थी। कलीसिया को अधीन रहना है। परमेश्वर का वचन आज्ञा देता है, और वह सब सभाओं को एक समान आज्ञा देता है।

1 तीमुथियुस 2 के विषय में: परन्तु पौलुस अपने विषय को थोड़ा और आगे ले जाता है। वह लिखता है: स्त्री चुपचाप पूरी अधीनता के साथ सीखे। और मैं स्त्री को न शिक्षा देने की अनुमति देता हूँ, न पुरुष पर प्रभुता करने की (पद 11–12)। वह इससे भी कुछ आगे जाता है। कोई स्त्री कह सकती है: मैं अपने अधिकार का दुरुपयोग तो नहीं करती; मैं केवल उसका उपयोग करती हूँ। परन्तु ठीक यही गलत है। उसे ऐसा कोई अधिकार चलाने से मना किया गया है। अतः यह हर बात पर लागू होता है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि स्त्री मज़बूत है और पुरुष कमज़ोर। अच्छा होता कि वे पति और पत्नी बनने से पहले इस पर विचार कर लेते। परन्तु इस स्थिति में भी कोई बहाना नहीं है। स्त्री को अपने पति पर अधिकार नहीं चलाना है। यह निस्संदेह (क्या मुझे यह भी जोड़ना पड़ेगा?) बाकी सब संबंधों पर भी लागू होता है।[1]

HJR की टिप्पणी: 15 वर्ष की आयु से मैंने केली के लेखों से प्रेम किया है। मैंने बहुत कुछ सीखा। परन्तु उनकी व्याख्याओं पर से मेरा भरोसा, या उनमें मेरी रुचि, लगभग समाप्त हो गई, जब दूसरी राय और दूसरे विश्वास रखने वाले लोगों के प्रति उनकी निर्दयी और निराधार कठोरता और घमंड मुझे अधिकाधिक दिखाई देने और खटकने लगे। दूसरी रायों की आलोचना तो हमेशा की जा सकती है, परन्तु अपनी राय को और ब्रदरन आंदोलन/ डिस्पेंसेशनलिज़्म (युग-विभाजनवाद)/सेसेशनिज़्म (आत्मिक वरदानों के समाप्त हो जाने का मत) की राय को हर दूसरी राय से ऊपर रखना दयनीय है, चाहे विलियम केली की तरह विद्वत्ता कितनी ही असाधारण क्यों न रही हो।

इन दोनों पदों पर केली के और भी पाठ होंगे, परन्तु वे भी अपने आरंभिक दौर के ब्रदरन आंदोलन की मुख्यधारा में ही चलते हैं।

यहाँ उद्धृत पाठों के विषय में कहना होगा कि उनमें अप्रत्यक्ष रूप से वह कठोरता पहले ही दिखाई देती है जिसकी यहाँ बात हुई है। क्योंकि यदि उस समय अन्यजाति भी इसे अशोभनीय समझते कि स्त्रियाँ सार्वजनिक रूप से सुसमाचार प्रचार करें, तो 1800 वर्ष बाद यह बदल भी तो सकता है। उनके समय में यह सचमुच अभी नहीं बदला था, परन्तु 20वीं शताब्दी में निश्चित रूप से बदल गया। तो फिर युग की भावना को मापदंड कैसे बनाया जा सकता है?

पुराने नियम में सामान्य अधीनता की उनकी धारणा एक निराधार घिसी-पिटी धारणा है। वे इसका कोई आधार भी नहीं देते, शायद किसी दूसरे स्थान पर देते हों। पुराने नियम के समय में स्त्रियों का पीछे रखा जाना पतन का परिणाम है, परमेश्वर की इच्छा का परिणाम नहीं। इस तथ्य पर इन भाइयों में से किसी ने ध्यान नहीं दिया, जिस पर मैं आरोप नहीं लगाता, बल्कि अधिक से अधिक दुःख प्रकट करता हूँ: वे, मैं डार्बी की तरह अपनी बात दोहराता हूँ, अपने समय की संतान थे। इस "स्त्री-प्रश्न" में समाज जैसा ढला हुआ था, वैसी ही उनकी व्याख्या ढली हुई थी। परमेश्वर के सामने इसका दुःख है। और यह तब, जबकि इस ब्रदरन आंदोलन में इतनी आशीष थी और उससे इतनी आशीष निकली। मैंने स्वयं इससे बहुत लाभ पाया है।

एफ़. डब्ल्यू. ग्रांट (F. W. Grant)

The Numerical Bible – 4 (पद 34-40): एक (पतित) सृष्टि में नियम।

4 इस सामान्य स्वतंत्रता का एक अपवाद होना था। सभाओं में, जब पवित्र लोग वास्तव में सब एक साथ इकट्ठे होते थे, स्त्रियों को चुप रहना था। यहाँ बात स्त्री की इस योग्यता की नहीं है कि वह दूसरों को समझाए या उनकी उन्नति करे, बल्कि क्रम के उस प्रश्न की है, जिससे प्रेरित ने आरंभ किया और जिसे सृष्टि निर्धारित करती है। स्त्री की स्वतंत्रता का, और कहा जा सकता है कि उसकी प्रभुता का क्षेत्र घर है, अर्थात वह निजी है, सार्वजनिक नहीं। यह नहीं सोचना चाहिए कि यह हर प्रकार के वरदानों के उपयोग के लिए बड़ा अवसर नहीं देता। यदि स्त्री केवल उसे अधिक विकसित करे जो वास्तव में उसके क्षेत्र का है, तो परमेश्वर ने उसे जिन वरदानों से सुसज्जित किया है, उनका उपयोग कितना फलदायी होता, और कितने स्थान उसके लिए खुले होते, जिन्हें पुरुष, पुरुष होने के कारण, उसी तरह नहीं भर सकता! बच्चों के संबंध में तो यह तुरंत स्पष्ट है: छोटे बच्चों के लिए स्त्री अब भी सबसे अच्छी और प्रकृति द्वारा ठहराई गई शिक्षिका है। परमेश्वर ने बच्चे को उसकी माँ की बाँहों में रखा है, पिता की बाँहों में नहीं; और इसका अर्थ यह नहीं कि स्त्री का क्षेत्र केवल उसके अपने परिवार में है। ऐसे अनगिनत परिवार हैं, जिनमें उसके स्त्री होने के कारण उसका प्रवेश होता है और जिनमें वह पूरी तरह घर जैसा अनुभव कर सकती है और अपने परिश्रम के लिए भरपूर लाभ और प्रतिफल पा सकती है। पत्नियों के द्वारा इस प्रकार स्त्रियों को बहुविध आशीष के लिए एक असीम कार्यक्षेत्र तक पहुँच मिलती है। पत्नी घर-गृहस्थी का हृदय है, और इस प्रकार स्त्री तक पहुँचने की योग्यता एक अपार विशेषाधिकार और उसे सौंपी गई एक बड़ी ज़िम्मेदारी है, जो उससे कहीं आगे जाती है जो दूसरी स्त्रियाँ कर सकती हैं। काश, इसे और अधिक पहचाना जाता! यह नहीं सोचना चाहिए कि प्रेरित इस नियम के द्वारा, जो स्पष्ट है, स्त्री को कुछ भी नहीं के बराबर कर देना चाहता था या उसे उन वरदानों के उपयोग से वंचित रखना चाहता था, जिनसे परमेश्वर ने उसे सुसज्जित किया है। जैसा कहा गया, यदि स्वयं पुरुषों को लें, तो उनमें से कितनों का उचित क्षेत्र किसी सार्वजनिक सेवा में है? इस अर्थ में स्त्रियाँ उतनी ही कम अयोग्य ठहराई गई हैं जितने पुरुषों की बड़ी संख्या। परमेश्वर ने हर एक को उसका स्थान दिया है, और केवल प्रेम की आत्मा की आवश्यकता है, ताकि वह बुद्धि मिले जो हर एक को उन द्वारों को पहचानने के योग्य बनाती है, जिन्हें परमेश्वर उनके लिए सदा खोलेगा जो मनुष्यों के बीच उसकी सेवा करना चाहते हैं।

इस प्रकार प्रेरित के शब्द एक दृष्टि से तो मना करने वाले हैं, परन्तु दूसरी दृष्टि से वे हमारे लिए केवल उस सच्चे क्षेत्र को खोलते हैं, जिसमें स्त्री आशीषित हो सकती है और सदा आशीषित हुई है। परन्तु वह इस पर कोई विवाद नहीं होने देता। वह कहता है, "क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है, या केवल तुम तक पहुँचा है? यदि कोई स्वयं को भविष्यद्वक्ता या आत्मिक समझता है, तो वह मान ले कि जो मैं तुम्हें लिखता हूँ, वे प्रभु की आज्ञाएँ हैं।" यहाँ यह कितना महत्वपूर्ण है, जहाँ लोग, विशेषकर आज के समय में, जैसा दिखाई देता है, उसे अनदेखा करने या उसका

विरोध करने की ओर झुकते हैं, जो वह हमें यहाँ देता है! वास्तव में, जैसा हम आसानी से देख सकते हैं, पूरे अध्याय को काफ़ी हद तक एक ओर कर दिया जाता है, क्योंकि उसमें उन असाधारण वरदानों की बात है जो समाप्त हो गए हैं, और जिनके स्थान पर कुल मिलाकर शायद एक ही प्रचारक आ जाता है, जिसके बारे में माना जाता है कि वह बाकी सब कुछ अपने व्यक्तित्व में समेटे हुए है, और जिस पर कलीसिया अधिकतर सीमित रह जाती है। इस प्रकार वास्तव में ऐसी संकीर्णता आ जाती है, जो यहूदी आराधनालय में कभी नहीं थी, जैसा प्रेरितों के काम की घटनाओं से आसानी से पहचाना जा सकता है। वहाँ लोग अलग-अलग वक्ताओं को आमंत्रित करने और उन्हें अवसर देने के लिए तैयार थे, रब्बियों की कड़ी नियमावली और कठोरता के बीच भी। आजकल चीज़ें निस्संदेह अधिक स्वतंत्रता की ओर बढ़ रही हैं; परन्तु दुःख की बात है कि साथ ही वे उतनी ही ढिलाई की ओर और यहाँ प्रेरित के वचन की अवहेलना की ओर भी झुकती हैं। वह संक्षिप्त और दृढ़ है। वह कहता है, "यदि कोई अनजान है, तो अनजान ही रहे।" यदि जो मैं पहले कह चुका हूँ, वह उसे प्रकाश देने के लिए पर्याप्त नहीं, तो वह ऐसे प्रकाश के बिना ही चले। दूसरी ओर आज निश्चय ही यहाँ की उसकी रीति के अनुसार एक प्रोत्साहन की आवश्यकता है: "इसलिए, भाइयो, भविष्यद्वाणी करने की धुन में रहो।" दुःख की बात है कि बहुत कम लोग जानते हैं कि ऐसे शब्दों का क्या अर्थ है; फिर भी ज़िम्मेदारी उतनी ही बड़ी बनी रहती है जितनी हमेशा थी, और वह कार्य भी, जिसके लिए हम सब सेवा करने को उत्तरदायी हैं। वह उन सरल शब्दों के साथ समाप्त करता है, जो इतने सरल और इतने व्यावहारिक हैं: "सब कुछ शालीनता से और क्रम से हो।"[2]

HJR की टिप्पणी: केली और डार्बी के बाद मैंने एफ़. डब्ल्यू. ग्रांट को पढ़ा। The Numerical Bible मेरे बाइबल-अध्ययन की स्थायी और सहायक साथी रही। एक उत्कृष्ट कृति, Logos में उपलब्ध। यह पाठ वहीं से उद्धृत और अनुवादित है।

क्योंकि ग्रांट जब यह कृति लिख रहे थे, तब वे शायद उससे कम आयु के थे जितनी आयु अब मेरी है, इसलिए मैं इस पर अपनी बात कह सकता हूँ। "सब बातों को परखो" तथाकथित "अच्छे" ब्रदरन साहित्य पर भी लागू होता है, जिसने स्वयं मुझे इतना कुछ दिया है। पद 34 और 35 की व्याख्या में उनमें सचमुच यह दिखाई देता है कि वे स्वयं इन शब्दों की कठोरता पर, अर्थात बोलने, भविष्यद्वाणी करने और प्रार्थना करने से पूर्ण बहिष्कार पर, कुछ चकित से प्रतीत होते हैं। वे इसे एक "अपवाद" कहते हैं। नहीं, अपवाद तब होता जब – केवल शब्द को समझाने के लिए – मान लीजिए विधवाओं को चुप रहना पड़ता, या 20 वर्ष से कम आयु की स्त्रियों को। वह एक अपवाद होता। परन्तु पूरे स्त्री-वर्ग को बाहर कर देना कोई अपवाद नहीं है, बल्कि 1 कुरिन्थियों 14 के पूरे संदर्भ में एक अबूझ और समझ से परे निर्देश है।

इसीलिए वे इतना पाठ इस पर लगाते हैं कि स्त्रियाँ इसके अलावा और क्या-क्या कर सकती हैं और उन्हें करना चाहिए। परन्तु वे भी अपने समय की युग-भावना के जाल में फँस जाते हैं: स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवन में काम नहीं करतीं, ठीक वैसे ही जैसे उनके समय के न्यूयॉर्क में। यह कि स्त्री का क्षेत्र घर है, युग-भावना के विचारों से मेल खाता है, पहली शताब्दी की भी, जब नए नियम के लेख लिखे गए, और 20वीं शताब्दी तक की युग-भावना की भी। परन्तु यह सृष्टि की व्यवस्था नहीं है, यह समाज की व्यवस्था है। वह पिछले 50 वर्षों में बहुत बदल गई है। स्त्रियाँ अब केवल घर में ही काम नहीं करतीं। वे ऐसा कर सकती हैं, और अच्छी माताओं के रूप में उन्हें बच्चों के साथ बहुत समय बिताना चाहिए। परन्तु बच्चे बड़े होते हैं, कम घर पर रहते हैं और फिर किसी दिन बिलकुल नहीं रहते। तो स्त्रियों के चुप रहने को घरेलू काम के इन विचारों से जोड़ना, मानो चुप रहने को किसी तरह विश्वसनीय बनाने के लिए एक कारण के रूप में – इसने शायद 10 वर्ष पहले तक मुझे क़ायल किया होता, परन्तु आज नहीं। इसमें आगे-पीछे कुछ भी मेल नहीं खाता।

वे भी, सब या अधिकतर लोगों की तरह, सृष्टि की व्यवस्था का सहारा लेते हैं। परन्तु यह व्यवस्था आख़िर है क्या? नर और नारी अपनी-अपनी विशेषताओं और क्षमताओं में, बराबरी के स्तर पर एक दूसरे को पूरा करते हुए, बिना किसी पदानुक्रमी एकतरफ़ा अधीनता के, जिसे परमेश्वर ने कभी नहीं चाहा, बल्कि जो पतन के साथ ही आई। इसलिए मेरा प्रश्न है: क्या पुरुष को अपने जीवन के लिए स्त्री की सहायता की आवश्यकता है, केवल आराधना सभा में नहीं? उसे वहाँ भी उन स्त्रियों के द्वारा पूर्णता की आवश्यकता क्यों नहीं है, जो प्रार्थना करती हैं और भविष्यद्वाणी करती हैं? सृष्टि की व्यवस्था की वह समझ काफ़ी एकतरफ़ा और पितृसत्तात्मक है, जो स्त्रियों का मुँह वहाँ बंद कर देती है जहाँ यीशु बीच में है। और यीशु ने स्त्रियों को कभी चुप रहने की आज्ञा नहीं दी – यह भी इस संदर्भ में कहना आवश्यक है, भले ही उनके जीवनकाल में सभा के रूप में इस तरह इकट्ठा होना अभी नहीं था।

एफ़. बी. होल (F. B. Hole)

पद 34 और 35 सभा में स्त्रियों के चुप रहने के विषय में हैं। यह आदेश बहुत स्पष्ट है, और "बोलने" के लिए प्रयुक्त शब्द सामान्य शब्द है और इसका अर्थ "गपशप करना" नहीं है, जैसा कुछ लोगों ने दावा किया है। यह नियम निस्संदेह युग की भावना के विपरीत खड़ा है। परन्तु यदि यह पवित्रशास्त्र पर ध्यान न देने का कारण है, तो जल्द ही पवित्रशास्त्र में बहुत कुछ नहीं बचेगा जिस पर अब भी ध्यान दिया जाए।

परमेश्वर का आत्मा पहले से जानता था कि इन निर्देशों की कैसे अवहेलना की जाएगी और उन पर कैसे आक्रमण किया जाएगा। यह झुकाव कुरिन्थुस में कुछ लोगों में पहले ही दिखाई दे रहा था। पद 36 और 37 से यही निष्कर्ष निकलता है। परमेश्वर का वचन स्वयं प्रभु से और उसके प्रेरितों से निकला था, कुरिन्थियों से नहीं। वह उन तक आया। वे स्वयं यह कल्पना कर सकते थे कि वे आत्मिक लोग हैं। यदि वे सचमुच आत्मिक थे, तो वे इसे इस बात से प्रमाणित करते कि वे पहचानते कि पौलुस (Paulus) द्वारा स्थापित क्रम के सिद्धांत उसके अपने विचार नहीं थे, बल्कि प्रभु की आज्ञाएँ थीं, जिन्हें उसने आगे पहुँचाया। आज आत्मिक समझ की कसौटी वही है।

हम भली-भाँति ध्यान दें कि परमेश्वर का वचन कलीसिया से नहीं निकलता। वह कलीसिया तक आता है।[3]

HJR की टिप्पणी: यदि पौलुस इसे प्रभु की आज्ञा कहता है, तो यह हमें किसी और स्थान पर क्यों नहीं मिलती? स्वयं प्रभु के यहाँ? या प्रेरितों के यहाँ? हाँ, सीधा-सादा मन कहता है कि उसका पालन करने के लिए हमें एक पद काफ़ी है। यह बहुत भक्तिपूर्ण सुनाई देता है। मैंने ब्रदरन के बीच पवित्रशास्त्र की तुलना पवित्रशास्त्र से करना सीखा और तब से आज तक उस पर चलता आया हूँ। परन्तु चुप रहने के इस मामले में यह संभव नहीं है। कोई तुलना करने योग्य पाठ नहीं है जो इस पाठ की पुष्टि करे।

यह मानना एक घिसा-पिटा निराशावाद है कि जो स्त्रियों को बोलने का अवसर देता है, वह जल्द ही इसके परिणामस्वरूप परमेश्वर के वचन की और भी बातों को अनदेखा करेगा या उनका इनकार करेगा। यह सीधी-सी बकवास है।

डब्ल्यू. डब्ल्यू. फ़ेरेडे (W. W. Fereday)

Bible Treasury (बाइबल का ख़ज़ाना), खंड 20, पृ. 378 से, प्रश्नों के उत्तर।

जहाँ तक सभा में स्त्रियों के बोलने की बात है, पवित्रशास्त्र स्पष्ट है – ऐसा नहीं होना चाहिए। 1 कुरिन्थियों 14:34-35 को वे लोग गलत नहीं समझ सकते, जो केवल प्रभु की इच्छा पूरी करना चाहते हैं। पूरा अध्याय पवित्र लोगों को, जब वे इकट्ठे होते हैं, सबसे बड़ी स्वतंत्रता देता है; एकमात्र नियम यह है कि सब कुछ उन्नति के लिए होना चाहिए,

जिसके लिए, मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं, पवित्र आत्मा के अगुवाई करने वाले हाथ की आवश्यकता है, जिसके बिना कुछ भी प्रभु के लाभ या महिमा के लिए नहीं हो सकता। फिर अपवाद आता है: "तुम्हारी स्त्रियाँ सभाओं में चुप रहें; क्योंकि उन्हें बोलने की अनुमति नहीं है", इत्यादि।

सार रूप में यही बात 1 तीमुथियुस 2 में है। पद 8 में कहा गया है कि "पुरुष (क्योंकि वहाँ निश्चयवाचक उपपद होना चाहिए) हर जगह बिना क्रोध और विवाद के पवित्र हाथों को उठाकर प्रार्थना करें।" फिर स्त्रियों के लिए वचन आता है: "वैसे ही स्त्रियाँ भी शालीन वस्त्रों से अपने आप को सँवारें" इत्यादि, जिसके बाद आता है: "स्त्रियाँ पूरी शांति और पूरी अधीनता के साथ सीखें। परन्तु मैं अनुमति नहीं देता कि कोई स्त्री शिक्षा दे, **न यह कि वह पुरुष का अधिकार अपने हाथ में ले ले,** बल्कि वह शांत रहे।" मुझे इसमें संदेह नहीं कि ये शब्द 1 कुरिन्थियों 14 की तरह सभा से संबंधित हैं, क्योंकि तीमुथियुस की पहली पत्री का बड़ा उद्देश्य यह दिखाना है कि परमेश्वर के घर में, जो जीवते परमेश्वर की कलीसिया, सत्य का खंभा और नींव है, कैसा व्यवहार करना चाहिए (क्योंकि पद ऐसे ही होना चाहिए, वह केवल तीमुथियुस के लिए कोई व्यक्तिगत निर्देश नहीं है, जैसा Authorized Version (King James Bible) से निष्कर्ष निकाला जा सकता है)।

दो कारण बताए गए हैं कि स्त्रियों को अगुवाई क्यों नहीं करनी चाहिए:

(1) वह स्थान, जो परमेश्वर ने उसकी पहली सृष्टि के समय उसे दिया;

(2) पतन में उसकी भूमिका।

(1) परमेश्वर ने पहले आदम को बनाया, फिर हव्वा को, और जैसा 1 कुरिन्थियों 11:3 में कहा गया है, "स्त्री का सिर पुरुष है", कभी इसका उलटा नहीं। क्योंकि परमेश्वर ने उसे दूसरा स्थान दिया है, इसलिए उसे शोभा देता है कि वह कभी पहला स्थान न खोजे।

(2) "आदम बहकाया न गया, पर स्त्री बहकाई जाकर अपराधिनी हुई।" शैतान ने निर्बल पात्र के द्वारा पाप को भीतर लाया (इससे आदम का पतन बेहतर या क्षम्य नहीं हो जाता, बल्कि और बुरा: क्योंकि वह बहकाया नहीं गया था, उसने खुली आँखों से पाप किया): इसलिए परमेश्वर उसे अगुवाई से बाहर रखता है।

उनकी अधीनता या उनके चुप रहने का एक और कारण 1 कुरिन्थियों 14:36 में बताया गया प्रतीत होता है। "क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है, या क्या वह केवल तुम्हीं तक पहुँचा है?" अब इस वचन को भली-भाँति तौलिए और देखिए कि इसमें क्या निहित है। परमेश्वर का वचन कलीसिया (स्त्री) तक आता है, उसमें से नहीं निकलता, जैसा रोमी कलीसिया हमें सिखाना चाहती है; मसीही स्त्री को यह बड़ा सिद्धांत सीखना है और उसके अनुसार चलना है, उसे पुरुष से सीखना है और पुरुष की शिक्षिका बनने का दावा नहीं करना है।

यह ध्यान देने योग्य है कि पवित्रशास्त्र कहीं भी यह मना नहीं करता कि कोई स्त्री प्रचार करे; परन्तु इसे आसानी से समझाया जा सकता है। पूर्व की एक स्त्री (और हमें भूलना नहीं चाहिए कि बाइबल पहले पूर्व के लोगों के हाथों में रखी गई थी) का स्थान इतना एकांत था कि वह कभी ऐसी किसी बात का सपना भी नहीं देख सकती थी। परन्तु परमेश्वर की सभा में, जहाँ सब उपस्थित लोग एक ही देह के अंग और परमेश्वर के पवित्र लोग हैं, वह कुछ हद तक स्वतंत्रता ले सकती थी; इसीलिए वे निर्देश हैं जिन पर हमने यहाँ विचार किया है।

परन्तु यह शायद ही वह बात है जो इस समय कुछ लोगों को चिंतित कर रही है; अब मैं उस पर आता हूँ। क्या यह उचित है कि बहनें किसी प्रार्थना-सभा या बाइबल-अध्ययन में भाग लें? मैं खुलकर स्वीकार करता हूँ कि ऐसी सभाएँ अपने आप में कलीसिया की सभाएँ नहीं हैं, जब तक कि उन्हें किसी समय प्रभु की मेज़ की ओर से विशेष

रूप से न बुलाया जाए; परन्तु क्या बहनें उनमें भाग ले सकती हैं? मुझे पूरा विश्वास है: ऐसे किसी मिलन में, जिसके द्वार आम लोगों के लिए खुले हों, उनकी भागीदारी उचित नहीं है। मैं पवित्रशास्त्र का ऐसा कोई स्थान नहीं जानता जो किसी स्त्री को सार्वजनिक रूप से सामने आने की अनुमति देता हो। यद्यपि ऐसे मिलन कड़े अर्थ में कलीसिया की सभाएँ नहीं हैं, फिर भी मेरा मत है कि सिद्धांत लागू होते हैं; और आज जैसे समय में, जब संसार में और कुछ हद तक कलीसिया में भी स्त्रियाँ अपने आचरण में (यहाँ तक कि अपने पहनावे में भी) पूरी तरह बदल रही हैं, ठीक वही लोग, जो परमेश्वर के अनुग्रह से सभा में परमेश्वर के क्रम के लिए खड़े होते हैं, अक्सर स्वयं के लिए कोई छोटी कीमत चुकाए बिना नहीं, ऐसे मामले में दृढ़ बने रहें। निश्चय ही मसीही बहनें प्रभु की इच्छा पूरी करना चाहती हैं और युग की भावना के पीछे नहीं चलना चाहतीं, यद्यपि उससे प्रभावित हो जाना सबसे आसान है।

मेरी समझ में 1 कुरिन्थियों 11 के निर्देश दूसरे स्वभाव के हैं। वहाँ स्त्रियों को निर्विवाद रूप से प्रार्थना करने और भविष्यद्वाणी करने की अनुमति है, इस शर्त पर कि वे इसे सिर ढककर करें, "स्वर्गदूतों के कारण"। अब यह स्पष्ट रूप से सार्वजनिक सभा में नहीं होता, क्योंकि वही पत्री, जैसा हमने देखा, इसे स्पष्ट शब्दों में मना करती है (और पवित्रशास्त्र का कोई भी श्रद्धावान पाठक यह नहीं मानता कि पवित्रशास्त्र अपना ही खंडन करता है); तो यह निजी प्रकार की सभाओं में ही होना चाहिए। आरंभिक समय में, आज से भी अधिक, विश्वासी अक्सर निजी घरों में और दूसरी जगहों पर बिना औपचारिकता के प्रार्थना और उन्नति के लिए मिलते थे। ऐसे मिलनों पर, जो वास्तविक अर्थ में कलीसिया की सभाएँ नहीं हैं और जिनका कोई सार्वजनिक स्वरूप नहीं है, मेरी समझ में 1 कुरिन्थियों 11 के उपदेश लागू होते हैं। इसके विरुद्ध, मैं यह कह सकता हूँ, हाल में कुछ लोगों ने विरोध किया है।

मुझे भरोसा है कि मैंने स्पष्ट लिखा है और प्रभु का मत, जैसा वह प्रकट हुआ है, प्रस्तुत किया है। मैं ऐसा विश्वास करता हूँ, परन्तु यदि इसमें किसी भी प्रकार की भूलें हों, तो मैं आभारी रहूँगा कि मुझे सुधारा जाए, चाहे प्रभु इसके लिए किसी को भी चुने। W. W. F.

HJR की टिप्पणी: चुप रहने के विषय पर प्रश्नों के इस उत्तर में भी तर्कों का पूरा भंडार फिर से एक साथ घोल दिया गया है, जैसा आज भी अक्सर होता है।

एक तो बिना किसी झिझक के 1 कुरिन्थियों 14 को 1 तीमुथियुस 2 के साथ मिला दिया जाता है। बाद वाला स्थान भी सभा से संबंधित बताया जाता है। ऐसा शायद नहीं है, क्योंकि "हर जगह" का अर्थ वे स्थान हैं जहाँ पुरुष एक दूसरे से मिलते हैं और प्रार्थना करने के बजाय झगड़ते हैं। सभा भी इसमें शामिल हो सकती है। परन्तु फिर कहा गया है: "वैसे ही स्त्रियाँ भी" – जिसका अर्थ है कि उन्हें भी हर जगह प्रार्थना करनी है, बस उन्हें ध्यान रखना है कि वे ध्यान खींचने के लिए आडंबरपूर्ण वस्त्र न पहनें। फिर बात सीखने की है, इस मामले में घर में, सभा में नहीं। और जिस स्त्री ने सीखा नहीं है, उसे निस्संदेह शिक्षा भी नहीं देनी चाहिए, क्योंकि बिना सीखे वह यह कर भी नहीं सकती। और उसे अधिकार अपने हाथ में नहीं लेना है। "पुरुष के" अधिकार के बारे में पाठ में कुछ नहीं लिखा है। अभिप्राय है शिक्षा देने का एक दुरुपयोग भरा, हानिकारक, ज़बरदस्ती वाला व्यवहार – और, जैसा पूरी पत्री का विषय है, झूठी शिक्षाओं का फैलाना।

यद्यपि अगुवाई करने और शिक्षा देने या सभा में बोलने का आपस में सीधा कोई संबंध नहीं है, फिर भी वे इस बात का कारण कि स्त्रियों को अगुवाई नहीं करनी चाहिए, यह बताते हैं कि हव्वा नहीं, बल्कि आदम पहले बनाया गया। परन्तु समय का कोई क्रम कभी इस बात का कारण नहीं होता कि किसी को अगुवाई नहीं करनी चाहिए। निर्णायक हमेशा योग्यता (वरदान) होती है। यदि कोई पुरुष बुरी तरह अगुवाई करता है, तो निश्चय ही वह स्त्री करे, जो इसे अच्छी तरह कर सकती है। पुरुष सिर है, उलटा नहीं, और इसलिए अगुवा है। दुःख की बात है कि यह सिर

की एक ऐसी व्याख्या है जिसका इस तरह आधार नहीं दिया जा सकता। सिर का अर्थ अधिकतर मूल और स्रोत है। इफिसियों 5 में सिर देखभाल करने वाला और उद्धारकर्ता है, न कि अधिकारी या अगुवा। यह कि एक पति अपनी पत्नी के आगे चले, उसका रक्षक और उसकी देखभाल करने वाला हो, यह एक अच्छी बात है। परन्तु स्वभाव, चरित्र और योग्यता के अनुसार भूमिकाएँ भिन्न हो सकती हैं। सृष्टि की व्यवस्था के रूप में एकतरफ़ा अधीनता अब भी एक परी-कथा है, जिस पर बहुत से लोग विश्वास करते हैं, तब भी जब वे उसके अनुसार नहीं जीते और घर में असल में स्त्रियों का ही राज चलता है और केवल बाहर के लिए भक्तिपूर्ण छवि बनाए रखी जाती है।

फिर यह कि स्त्री बहकाई गई, इस बात का कारण बताया जाता है कि संसार की कोई भी स्त्री अगुवाई क्यों नहीं कर सकती। तीमुथियुस के पाठ की व्याख्या ऐसे की जाती है। इसमें कोई तर्क नहीं है। पूरी पत्री उन पुरुषों के बारे में भी बात करती है जो झूठी शिक्षा से बहकाए जाते हैं। क्या स्त्री अधिक आसानी से बहकाई जा सकती है और इसलिए अगुवाई नहीं कर सकती? निस्संदेह ऐसी स्त्रियाँ हैं जो आसानी से बहकाई जा सकती हैं, परन्तु उनकी पहचान यह नहीं होती कि वे अगुवा हैं या बनना चाहती हैं। क्या हव्वा ने अदन में अगुवाई अपने हाथ में ली? क्या इसे ऐसा कहा जा सकता है? क्या एक फल आगे देना अगुवाई का कोई कार्य है? और इस तथाकथित अगुवाई के कार्य से अगुवाई और शिक्षा देने पर प्रतिबंध निकाल लेना? और वह भी संसार की हर स्त्री के लिए! नहीं, इस तर्क के लिए कम से कम बाइबल में एक समानांतर स्थान की आवश्यकता होती, जिसकी मैं आज तक प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

हैमिल्टन स्मिथ (Hamilton Smith)

(पद 34, 35)। सभा में एक-एक करके भविष्यद्वाणी करने की सब की स्वतंत्रता स्त्रियों पर लागू नहीं होती। उन्हें सभाओं में चुप रहना है। वे ऐसा करने में सक्षम हैं या नहीं, यह प्रश्न ही नहीं है। सार्वजनिक रूप से स्त्रियों का चुप रहना सृष्टि की व्यवस्था और व्यवस्था (तोरा) दोनों के अनुरूप है। स्त्री की स्वतंत्रता का क्षेत्र घर में है। सार्वजनिक रूप से बोलने का अर्थ है स्वयं को लज्जा से ढक लेना।

HJR की टिप्पणी: मैंने स्मिथ से बहुत कुछ सीखा है और मुझे उनकी शैली पसंद आई। परन्तु यहाँ वे थोड़े में वह सब कुछ एक साथ ले आते हैं, जिसकी मैंने ऊपर कई बार चर्चा की है और जिस पर प्रश्न उठाए हैं।

विलियम मैकडॉनल्ड (William MacDonald)

14:33 "क्योंकि परमेश्वर अव्यवस्था का नहीं, परन्तु शान्ति का परमेश्वर है।" दूसरे शब्दों में, यदि कोई सभा पूरी तरह अस्त-व्यस्त गड़बड़ी है, तो आप निश्चित हो सकते हैं कि यहाँ परमेश्वर का आत्मा काम नहीं कर रहा!

14:34 यह सामान्य रूप से ज्ञात है कि नए नियम का पदों में विभाजन और यहाँ तक कि उसके विराम-चिह्न भी मूल लेखों के लिखे जाने के कई शताब्दियों बाद जोड़े गए। पद 33 का अंतिम उपवाक्य अधिक अर्थपूर्ण होता है, यदि उसे सर्वव्यापी परमेश्वर के विषय में एक सामान्य सत्य के रूप में देखने के बजाय पद 34 का निकट विवरण माना जाए (कुछ यूनानी मूल पाठ और कई जर्मन बाइबल संस्करण यही विराम-चिह्न प्रयोग करते हैं)। इसलिए हमारे अनुवाद में कहा गया है: "जैसा पवित्र लोगों की सब कलीसियाओं में होता है, तुम्हारी स्त्रियाँ कलीसियाओं में चुप रहें, क्योंकि उन्हें बोलने की अनुमति नहीं दी जाती, परन्तु वे अधीन रहें, जैसा व्यवस्था भी कहती है।" जो निर्देश पौलुस (Paulus) कुरिन्थियों को देता है, वे केवल उन्हीं पर लागू नहीं होते। यही शिक्षाएँ "पवित्र लोगों की सब कलीसियाओं" को दी गई हैं। नया नियम अनेक स्थानों पर गवाही देता है कि स्त्रियाँ बहुत सी मूल्यवान सेवाएँ तो कर सकती हैं, परन्तु उन्हें स्थानीय कलीसिया में अगुवाई का कोई पद नहीं रखना चाहिए। उन्हें परिवार में और

बच्चों की परवरिश में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य दिए गए हैं। परन्तु उन्हें कलीसिया में सार्वजनिक रूप से बोलने की अनुमति नहीं है। उनके स्थान की पहचान पुरुष के अधीन रहना है।

हम मानते हैं कि जोड़ी गई अभिव्यक्ति ("जैसा व्यवस्था भी कहती है") पुरुष के प्रति स्त्री की अधीनता से संबंधित है। यह अधीनता व्यवस्था में, जिससे यहाँ शायद मुख्य रूप से मूसा की 5 पुस्तकें अभिप्रेत हैं, स्पष्ट रूप से सिखाई गई है। उदाहरण के लिए उत्पत्ति 3:16 में कहा गया है: "तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा!"

अक्सर यह दावा किया जाता है कि इस पद में पौलुस यह मना करता है कि स्त्रियाँ आराधना के समय आपस में बातें करें और ताज़ा गपशप का आदान-प्रदान करें। परन्तु ऐसी व्याख्या टिक नहीं सकती। जिस शब्द का यहाँ "बोलना" (laleo) अनुवाद किया गया है, उसका अर्थ कोइने यूनानी में "गपशप करना" नहीं है। यही शब्द इसी अध्याय के पद 21 में और इब्रानियों 1:1 में परमेश्वर के लिए प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है: "अधिकार के साथ बोलना।" (HJR: ??)

14:35 स्त्रियों को कलीसिया में सार्वजनिक रूप से प्रश्न पूछने की भी अनुमति नहीं है। "परन्तु यदि वे कुछ सीखना चाहें, तो घर पर अपने-अपने पति से पूछें।" शायद कुछ स्त्रियाँ प्रश्न पूछकर पिछले प्रतिबंध से बचना चाहती थीं। ऐसे सरल प्रश्नों के द्वारा दूसरों को शिक्षा देना संभव है। इसलिए यह पद यह चोर-दरवाज़ा भी बंद कर देता है।

यदि अब कोई पूछे कि इसे किसी अविवाहित स्त्री या विधवा पर कैसे लागू करना चाहिए, तो उत्तर यह है कि पवित्रशास्त्र हर एक मामले को नहीं लेता, बल्कि केवल सामान्य सिद्धांत स्थापित करता है। यदि किसी स्त्री का पति नहीं है, तो वह अपने पिता, अपने भाई या कलीसिया के प्राचीनों में से किसी से पूछ सकती है। इसका अनुवाद यह भी किया जा सकता है: "वे घर पर अपने पुरुष-जनों से पूछें।" मूल नियम, जिसे याद रखना चाहिए, यह है: "स्त्री का कलीसिया में बोलना लज्जा की बात है।"

14:36 स्पष्ट है कि प्रेरित पौलुस ने पहचान लिया था कि यहाँ उसकी शिक्षा काफ़ी विरोध को जन्म देगी। वह कितना सही था! ऐसे प्रति-तर्कों का सामना करने के लिए वह पद 36 में व्यंग्य से पूछता है: "या क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है? या क्या वह केवल तुम्हीं तक पहुँचा है?" दूसरे शब्दों में: क्या कुरिन्थी यह दावा करना चाहते थे कि वे इस बात को प्रेरित से अधिक समझते हैं? फिर उसने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने कलीसिया के रूप में "परमेश्वर का वचन" लिखा था, या क्या वे ही अकेले थे जिन्होंने उसे पाया था। अपनी मनोवृत्ति के द्वारा उन्होंने इस मामले में स्वयं को अधिकारी बना लिया था। परन्तु तथ्य यह है कि किसी भी कलीसिया ने अकेले परमेश्वर का वचन नहीं लिखा और किसी भी कलीसिया के पास उस पर कोई विशेष अधिकार नहीं है।

14:37 पिछले सब निर्देशों के संबंध में प्रेरित यहाँ ज़ोर देता है कि वे उसकी अपनी कल्पनाओं या व्याख्याओं से नहीं आते, बल्कि "प्रभु की आज्ञा" हैं। और हर वह व्यक्ति जो प्रभु का "भविष्यद्वक्ता" है या सचमुच "आत्मिक वरदान पाया हुआ" है, इसे स्वीकार भी करेगा। यह पद उन लोगों के लिए पर्याप्त उत्तर है, जो सोचते हैं कि पौलुस की कुछ शिक्षाएँ (विशेषकर स्त्रियों के विषय में उसके निर्देश) उसके अपने पूर्वाग्रहों को दर्शाती हैं। ये निर्देश पौलुस के निजी विचार नहीं हैं, बल्कि "प्रभु की आज्ञा" हैं।[4]

आंद्रेयास श्टाइनमाइस्टर (Andreas Steinmeister)

उद्धृत: "Das Schweigen der Frauen. Eine Studie über 1. Korinther 14,34" (स्त्रियों का चुप रहना। 1 कुरिन्थियों 14:34 पर एक अध्ययन – जर्मन में), www.soundwords.de

6. 1 कुरिन्थियों 14:26 में "भाइयों" को संबोधित किया गया है, और पद 34 में कहा गया है: "स्त्रियाँ चुप रहें" (1 कुरिन्थियों 14:34)। यदि यहाँ "भाइयों" का अर्थ "भाई और बहनें" होता, तो यह पद 34 का खंडन होता। पौलुस (Paulus) "भाइयों" और "बहनों" को पद 26 की बातों के लिए कैसे प्रोत्साहित कर सकता था और साथ ही पद 34 में कह सकता था कि स्त्रियाँ सभाओं में चुप रहें, और 1 तीमुथियुस 2:12 में आदेश दे सकता था कि स्त्रियाँ शिक्षा न दें?

"क्योंकि स्त्री का सभा में बोलना लज्जा की बात है।" यहाँ वही शब्द है जो 1 कुरिन्थियों 11:6 में है, जहाँ कहा गया है कि यह लज्जा की बात है यदि किसी स्त्री के बाल कटे हुए या मुँड़े हुए हों। बहुत सी स्त्रियों के लिए यह दूसरी बात दशकों से लज्जा की बात नहीं रही, क्योंकि उन्हें सिखाया गया कि यह उस समय की एक सांस्कृतिक रीति थी। तो इसमें किसे आश्चर्य होगा कि अब यह भी लज्जा की बात नहीं रही कि स्त्रियाँ सभाओं में बोलें? कुछ स्त्रियों के लिए यह भी अब कोई विषय नहीं रहा कि वे निजी रूप से प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करते समय और इकट्ठा होने के समय "स्वर्गदूतों के कारण" (किसी संस्कृति या किन्हीं भाइयों और बहनों के कारण नहीं) अपना सिर न ढकें। जब कोई इस बात से बहुत पहले निपट चुका हो, तो निस्संदेह उसे आश्चर्य नहीं होता कि 1 कुरिन्थियों 14:34 में "चुप रहना" शब्द का अब कोई अर्थ नहीं रहा और इसलिए कोई आत्मिक सामर्थ्य भी नहीं रही।

HJR की टिप्पणी: आंद्रेयास बहुत जल्दी और अचानक प्रभु के पास चले गए। दुःख की बात है कि इसलिए मैं उनका खंडन नहीं कर सका – उसी जोश के साथ, जिसके लिए वे जाने जाते थे।

पेटर श्ट्राइटेनबर्गर (Peter Streitenberger)

यूनानी बहुसंख्यक पाठ	जर्मन अनुवाद (यहाँ हिन्दी में)	टिप्पणी
14,34 Αἱ γυναῖκες ὑμῶν ἐν ταῖς ἐκκλησίαις σιγάτωσαν· οὐ γὰρ ἐπιτέτραπται αὐταῖς λαλεῖν, ἀλλ᾽ ὑποτάσσεσθαι, καθὼς καὶ ὁ νόμος λέγει.	तुम्हारी स्त्रियाँ सभाओं में चुप रहें। क्योंकि उन्हें बोलने की अनुमति नहीं है, बल्कि उन्हें अधीन रहना है, जैसा व्यवस्था भी कहती है।	λαλέω ("बोलना") के साथ "कहना" से भिन्न शब्द प्रयोग हुआ है, इसलिए बात यह नहीं है कि स्त्रियाँ "नमस्ते" या "आमीन" कह सकती हैं या नहीं; यह सभाओं में योगदान के अर्थ में बोलना है, या जैसा पौलुस 1 तीमुथियुस में स्पष्ट करता है, निर्देश देने वाली बातें, जैसे शिक्षा देना, प्रार्थना, व्याख्या, गीतों के सुझाव, भविष्यद्वाणी करना (या पद 35 के अनुसार प्रश्न पूछना), क्योंकि ये सब पहले ही भाइयों को सौंपे जा चुके हैं। क्रियार्थक संज्ञा ὑποτάσσεσθαι ("उन्हें अधीन रहना है") आज्ञार्थ के रूप में प्रयोग हुई है।
14,35 Εἰ δέ τι μαθεῖν θέλουσιν, ἐν οἴκῳ τοὺς ἰδίους ἄνδρας ἐπερωτάτωσαν· αἰσχρὸν γάρ ἐστιν γυναιξὶν ἐν ἐκκλησίᾳ λαλεῖν.	परन्तु यदि वे सीखना चाहें, तो घर पर अपने-अपने पतियों से पूछें। क्योंकि स्त्रियों का सभा में बोलना लज्जा की बात है।	स्थानसूचक ἐν οἴκῳ ("घर में, घर पर") वाक्य के आरंभ में रखा गया है और ऊपर के "सभा में" के साथ विरोध बनाता है। पौलुस यह कारण देता है कि स्त्रियाँ बोलें नहीं, बल्कि चुप रहें, क्योंकि यह लज्जा की बात है, अर्थात यह अनुचित है, क्योंकि सृष्टि की व्यवस्था ने पुरुष को सिर ठहराया है, जिससे अधिकार निकलता है (तुलना करें 1 कुरिन्थियों 11)।
14,36 Ἢ ἀφ᾽ ὑμῶν ὁ λόγος τοῦ θεοῦ ἐξῆλθεν; Ἢ εἰς ὑμᾶς μόνους κατήντησεν;	या क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है? या क्या	पौलुस ने सब सभाओं में स्त्रियों के चुप रहने का आदेश दिया है, इसलिए अब वह ये आलंकारिक प्रश्न पूछता है कि क्या कुरिन्थियों ने अकेले परमेश्वर का वचन आगे दिया या पाया, जो कि सच नहीं है।

यूनानी बहुसंख्यक पाठ	जर्मन अनुवाद (यहाँ हिन्दी में)	टिप्पणी
	वह केवल तुम्हीं तक पहुँचा?	परमेश्वर का वचन बाकी सब तक भी पहुँचा, इसलिए कोई भी सभा किसी दूसरी सभा से भिन्न विचार नहीं रख सकती।

पूरी पत्री का लिंक: (1) Der erste Korintherbrief Text und Übersetzung mit Kommentar | Peter Streitenberger - Academia.edu

HJR की टिप्पणी: पेटर इस संदर्भ में ब्रदरन की जानी-मानी शिक्षा का प्रतिनिधित्व करते हैं, बिना उस पर प्रश्न उठाए, जबकि इसके बहुत से कारण होते। दुःख की बात है कि केवल प्राचीन यूनानी भाषा का अच्छा से बहुत अच्छा ज्ञान ही किसी को अच्छा बाइबल-व्याख्याकार नहीं बना देता।

जो यूनानी पाठों/पांडुलिपियों के साथ काम करता ही है, उसे अपने पाठकों से यह नहीं छिपाना चाहिए कि ये दोनों पद पश्चिमी हस्तलिपियों में पद 33 के बाद नहीं, बल्कि अध्याय के अंत में आते हैं। इससे यह संदेह पैदा होता है कि ये बाद में जोड़े गए हैं और पौलुस के नहीं हैं।

आर्नो होहागे (Arno Hohage) (फ़्री ब्रदरन)

निम्नलिखित दोनों लेखकों को इस पुस्तक से स्थान-स्थान पर उद्धृत किया गया है:

Frau sein, Mann sein in der Gemeinde, Brennpunkt Frauenfrage, 2012

c. चुप क्यों रहें?

तो सबसे पहले सृष्टि की व्यवस्था लागू होती है: स्त्रियाँ कलीसियाओं में चुप रहें (1 कुरिन्थियों 14:34)। यह केवल पत्नियों पर नहीं, बल्कि सब स्त्रियों पर लागू होता है। क्योंकि यहाँ "तुम्हारी स्त्रियाँ" नहीं लिखा है। संबंधसूचक विशेषण "तुम्हारी", जो कुछ हस्तलिपियों में आता है, मूल नहीं माना जा सकता, बल्कि एक जोड़ है, जिसका Textus Receptus ने अनुसरण किया है (cf. Metzger, p. 500)। सृष्टि की व्यवस्था, जिसे यहाँ मानकर चला गया है, परिवार से आगे जाती है और मूल रूप से पुरुष और स्त्री के बीच के अंतर की ओर संकेत करती है।

इसके अलावा स्त्री के लिए मौन की आज्ञा के दो और कारण हैं। उन्हें ज़ोर देकर कहा गया है:

1. "उसे बोलने की अनुमति नहीं है" (1 कुरिन्थियों 14:34)। कर्मवाच्य रचयिता का नाम नहीं बताता, परन्तु किसी ऊँचे अधिकारी ने, सबसे बढ़कर प्रभु ने, उसे बोलने का अधिकार नहीं दिया है। एक स्पष्ट अनुमति आवश्यक होती!
2. "स्त्री का कलीसिया में बोलना लज्जा की बात है।" यह बहुत कड़ा शब्द है। यह अनादर, लज्जा, निंदनीय बात को दर्शाता है ... स्त्री का बोलना अरुचि पैदा करता है। यह निर्णय कठोर और अनुचित लगता है, इसलिए लोग इसे बस अनदेखा कर देते हैं। परन्तु क्या हम परमेश्वर के वचन को अनदेखा कर सकते हैं?

यदि कोई 1 कुरिन्थियों के अध्याय 11 को अध्याय 14 का खंडन कहता है, तो वह प्रेरित पौलुस पर असंगत सोच का आरोप लगाता है। किसी विद्वान रब्बी पर यह आरोप लगाना बेतुका लगता है कि वह कुछ ही पृष्ठों के भीतर सीधे-सीधे अपना ही खंडन करता है, इस बात से बिलकुल अलग कि हम यह मानकर चलते हैं कि हमारा सामना परमेश्वर के वचन से है। उस लेखक का अधिकार, जिसे प्रभु ने नियुक्त किया है (14:37), दोनों अध्यायों पर समान

रूप से लागू होता है। अतः दोनों का अर्थ भी बिना किसी विरोधाभास के निकलता है। वास्तव में पुरानी टीकाओं (जैसे Zahn, Hodge) ने समाधान पहले ही दिखा दिया था, अर्थात यह कि अध्याय 11 में निजी जीवन में स्त्री की और अध्याय 14 में कलीसिया में स्त्री की बात है। सुविधा के कारणों से आज इस दृष्टिकोण को छोड़ दिया गया है, और अब लोग एक दुविधा के सामने खड़े हैं, जिसे पाठ की व्याख्या के द्वारा सुलझाना है। परन्तु परिणाम अक्सर अनुचित होता है।

यद्यपि पौलुस 1 कुरिन्थियों 11:17 में जाकर ही कलीसिया में इकट्ठा होने की बात करता है, फिर भी कभी-कभी ऐसा दिखाया जाता है मानो अध्याय का पहला भाग भी उसी से संबंधित हो। यदि पद 16 में ही "कलीसिया" शब्द आता है, तो केवल यह बताने के लिए कि कलीसिया से संबंध रखने वाला "कोई" झगड़ालू न हो और इसलिए कलीसिया की रीतियों के अनुसार चले।

HJR की टिप्पणी: फ़्री ब्रदरन की पंक्तियों से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि बहनों को अचानक भाग लेने की अनुमति मिल जाएगी। वे क्लोज़्ड ब्रदरन जितने ही ज़ोर से पूर्ण मौन की आज्ञा का समर्थन करते हैं।

होहागे इस निर्देश का कारण सृष्टि की व्यवस्था बताते हैं, बिना यह स्पष्ट किए कि लिंगों के अंतर के अलावा उसमें क्या शामिल है। परन्तु यह मानी हुई सृष्टि की व्यवस्था तो पूरी सृष्टि में लागू होती है। सूर्य के नीचे दूसरे अवसरों के लिए, जहाँ पुरुष और स्त्रियाँ इकट्ठे होते हैं, ऐसा कोई तुलनीय आदेश क्यों नहीं है? लिंगों का अंतर अपने आप में कोई कारण नहीं है। यह तर्क भी दिया जा सकता है – और मेरी समझ में बाइबल के अनुसार भी ऐसा ही है – कि लिंगों का अंतर ही वह समृद्धि है, जो परमेश्वर अपनी कलीसिया को देना चाहता है।

होहागे के लिए स्त्रियों की भागीदारी की एक स्पष्ट अनुमति आवश्यक है। मेरी समझ में यह आवश्यक नहीं है। पूरे नए नियम की पृष्ठभूमि में यह इतनी स्वाभाविक बात है कि स्त्रियाँ भाग लेती हैं, कि किसी स्पष्ट अनुमति की आवश्यकता ही नहीं है।

अंत में: यह लज्जा की बात है! कल्पना कीजिए एक बहन की, जो दिखाई देने वाली नम्र मनोवृत्ति में ऊँचे स्वर से सरल शब्दों में उद्धार के लिए परमेश्वर का धन्यवाद करती है। इसे लज्जा की बात कहना तो सबसे बड़ी चिंता पैदा करना चाहिए। यदि सचमुच कोई मौन की आज्ञा होती, और इस प्रकार सभा में प्रार्थना करने पर प्रतिबंध, तो इस आज्ञा का एक बार पालन न करना एक चूक होती – परन्तु कभी लज्जा की बात नहीं।

उलरिख़ प्लेच (Ulrich Pletsch) (फ़्री ब्रदरन)

1 कुरिन्थियों 11:5 और 14:34-35 के बीच तथाकथित तनाव के विषय में

पौलुस के इन कथनों से क्या निकाला जा सकता है?

1. वह स्पष्ट रूप से बोलने और अधीनता के बीच एक विरोध देखता है; अर्थात वह कलीसिया में स्त्री के बोलने से अधीनता की आज्ञा का उल्लंघन होते देखता है।
2. स्पष्ट है कि किसी स्त्री को कलीसिया में प्रश्न पूछने या बोलने की अनुमति नहीं है।
3. पौलुस यहाँ इस प्रश्न पर स्पष्ट रूप से कई कथन देता है कि स्त्री कलीसिया में बोले या चुप रहे।
4. पौलुस यहाँ इसमें कोई संदेह नहीं छोड़ता कि उसके कथन कलीसिया की आराधना सभाओं से संबंधित हैं।
5. पौलुस यहाँ कलीसिया में स्त्री के चुप रहने या बोलने के संबंध में तीन आज्ञाएँ और एक प्रतिबंध बताता है।

6. केवल बाहरी पहलू (आज्ञा, प्रतिबंध, शब्दों का चुनाव) ही स्पष्ट कर देते हैं कि पौलुस यहाँ एक स्पष्ट शिक्षा-कथन दे रहा है। परन्तु विशेषकर विषय-वस्तु के कथन इस पर ज़ोर देते हैं कि यहाँ स्पष्ट रूप से ऐसे शिक्षा-कथनों की बात है, जो इस प्रश्न से संबंधित हैं कि स्त्री कलीसिया में बोल सकती है या उसे चुप रहना चाहिए।

अवलोकन, निष्कर्ष और आगे के प्रश्न अवलोकन 1. इस प्रश्न पर शिक्षा-कथन कि स्त्री कलीसिया में बोल सकती है या उसे चुप रहना चाहिए, हमें केवल 1 कुरिन्थियों 14 में मिलते हैं, 1 कुरिन्थियों 11 में नहीं।

2. पौलुस 1 कुरिन्थियों 11 में उल्लेख करता है कि स्त्रियाँ प्रार्थना करती हैं या भविष्यद्वाणी करती हैं। वे यह कलीसिया में करती हैं या नहीं, इसका वह 1 कुरिन्थियों 11 में उल्लेख नहीं करता। (ठीक यही दोनों पाठों के बीच के तनाव का कारण और केंद्र है!) 3. 1 कुरिन्थियों 14 में पौलुस कलीसिया में स्त्री के बोलने को मना करता है और उसके चुप रहने की आज्ञा देता है। 1 कुरिन्थियों 11 में ऐसा कोई कथन नहीं है, जो इन प्रतिबंधों या इस आज्ञा को कमज़ोर करे या निष्प्रभावी तक कर दे।

निष्कर्ष

1. 1 कुरिन्थियों 11 में पौलुस को इस प्रश्न से बिलकुल भी मतलब नहीं है कि स्त्रियाँ कलीसिया में प्रार्थना करती हैं या नहीं। उसे इस प्रश्न से मतलब है कि प्रार्थना करते या भविष्यद्वाणी करते समय स्त्रियों को किस बात का ध्यान रखना चाहिए। यह कलीसिया में होता है या नहीं, यह यहाँ उसका विषय नहीं है।

2. हमारी कलीसियाई सभाओं में स्त्रियों की भागीदारी के संबंध में हमारे प्रश्न पर शिक्षा-कथन केवल 1 कुरिन्थियों 14 में मिलते हैं।

3. हमारी कलीसियाई सभाओं में स्त्रियों की भागीदारी के संबंध में हमारे प्रश्न के लिए 1 कुरिन्थियों 14 स्पष्ट रूप से अधिक स्पष्ट बाइबल-स्थान है। इसलिए 1 कुरिन्थियों 11 की व्याख्या 1 कुरिन्थियों 14 के आधार पर करनी है, उलटे नहीं!

4. यह माँग कि 1 कुरिन्थियों 14 को प्राथमिकता देने वाला हर मत यह समझाए कि वह 1 कुरिन्थियों 11 से कैसे संबंध रखता है, उचित है, परन्तु इस समय उसकी कोई भूमिका नहीं है। ऊपर बताए गए प्रश्न पर बाइबल-स्थानों के कथनों का महत्व तौलने के लिए यह समझाना आवश्यक नहीं कि 1 कुरिन्थियों 11 को 1 कुरिन्थियों 14 के आधार पर कैसे समझा जा सकता है। यहाँ सबसे पहले यह स्थापित करना है कि 1 कुरिन्थियों 14 हमारे प्रश्न पर स्पष्ट रूप से अधिक स्पष्ट और अधिक वज़नदार कथन देता है। इससे व्यवहार के लिए कौन से निष्कर्ष निकलते हैं और आवश्यकता होने पर किन सहायक ढाँचों का सहारा लेना पड़ेगा, यह यहाँ प्रासंगिक नहीं है। इसी स्थान पर यह तय होता है कि कोई दोनों बाइबल-स्थानों के कथनों को पाठों की तुलना के आधार पर तौलता और आँकता है या किसी पूर्व-धारणा के आधार पर।

आगे के प्रश्न

1. 1 कुरिन्थियों 14:34-35 में मौन की आज्ञा या बोलने पर प्रतिबंध को पूरे अध्याय के संदर्भ में कैसे समझा जाए?

यहाँ पहले ही यह स्थापित कर देना है कि "सशर्त मौन" का दृष्टिकोण 1 कुरिन्थियों 14 को 1 कुरिन्थियों 11 के आधार पर समझाने के प्रयास से निकलता है। परन्तु क्योंकि 1 कुरिन्थियों 14 इस प्रश्न पर अधिक स्पष्ट और अधिक वज़नदार कथन देता है, इसलिए यह दृष्टिकोण किसी पूर्व-धारणा की उपज है, या एक सहायक ढाँचा है, जिसे पाठ के वास्तविक कथनों से ऊपर रख दिया जाता है।

2. क्या 1 कुरिन्थियों 14 में मौन की आज्ञा या बोलने पर प्रतिबंध में 1 कुरिन्थियों 11 का प्रार्थना करना या भविष्यद्वाणी करना भी शामिल है?

यदि 1 कुरिन्थियों 14 अधिक वज़नदार स्थान है – और वह स्पष्ट रूप से है (!) –, तो मौन की आज्ञा या बोलने पर प्रतिबंध में 1 कुरिन्थियों 11 का प्रार्थना करना या भविष्यद्वाणी करना भी शामिल होना चाहिए, जब बात कलीसिया के रूप में इकट्ठा होने की हो।

यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि क्या 1 कुरिन्थियों 14 में मौन की आज्ञा या बोलने पर प्रतिबंध को 1 कुरिन्थियों 11 के प्रकाश में सीमित अर्थ में समझना है! 1 कुरिन्थियों 14 की व्याख्या 1 कुरिन्थियों 11 के प्रकाश में नहीं की जाती, बल्कि इसके विपरीत: 1 कुरिन्थियों 11 की व्याख्या 1 कुरिन्थियों 14 के प्रकाश में करनी है।

[...] 4. जो यह दावा करता है कि मौन की आज्ञा और बोलने पर प्रतिबंध को पूर्ण अर्थ में नहीं समझना चाहिए, उसे बाइबल के पाठों की सहायता से और सहायक ढाँचों का सहारा लिए बिना स्पष्ट करना होगा,

- कि 1 कुरिन्थियों 11 भी 1 कुरिन्थियों 14 जितनी ही स्पष्टता से कलीसियाई सभा के संदर्भ की बात करता है,
- कि 1 कुरिन्थियों 11 भी 1 कुरिन्थियों 14 की तरह इस प्रश्न पर शिक्षा-कथन देता है कि स्त्री कलीसिया में चुप रहे या बोल सकती है,
- कि और कैसे 1 कुरिन्थियों 11 1 कुरिन्थियों 14 के असाधारण रूप से स्पष्ट निर्देशों को सापेक्ष बना देता है,
- कि 1 कुरिन्थियों 14:34-35 और 1 कुरिन्थियों 14:29 के बीच एक स्पष्ट संबंध है, अर्थात कि मौन की आज्ञा और बोलने पर प्रतिबंध भविष्यद्वाणी के वचन को परखने से संबंधित हैं,
- कि स्त्री का चुप रहना भी पद 28 और 30 की तरह एक "सशर्त मौन" है,
- कि भविष्यद्वाणी के वचन को परखने को सार्वजनिक चर्चा या टिप्पणी के अर्थ में समझना है

और कि पूरी उपस्थित कलीसिया भविष्यद्वाणी के वचन को परखने में भाग लेती है,

- कि जो स्त्रियाँ कुछ सीखना चाहती हैं, उनके प्रश्न भी भविष्यद्वाणी के वचन को परखने से संबंधित हैं, और कि केवल समझने के लिए पूछे गए प्रश्न को भविष्यद्वाणी के वचन को परखना कैसे माना जाए।

5. 1 कुरिन्थियों 11:5 का कथन अपने अर्थ में न तो सापेक्ष बनता है और न बदलता है, जब उसकी व्याख्या 1 कुरिन्थियों 14 के प्रकाश में की जाती है। यह कि स्त्रियाँ प्रार्थना करती हैं और भविष्यद्वाणी करती हैं, कोई प्रश्न ही नहीं है। यदि अब 1 कुरिन्थियों 14 की व्याख्या से यह निकलता है कि स्त्री कलीसियाई सभा में प्रार्थना या भविष्यद्वाणी नहीं करती, तो यह किसी भी प्रकार 1 कुरिन्थियों 11 के कथन का खंडन नहीं करता। 1 कुरिन्थियों 11 का कथन बिना बदले बना रहता है।
6. परन्तु यदि 1 कुरिन्थियों 14 की व्याख्या 1 कुरिन्थियों 11 के प्रकाश में की जाती है, तो 1 कुरिन्थियों 14:34-35 के कथनों को अपने अर्थ में सापेक्ष बनाना पड़ेगा।

C. अंतिम सारांश

1. यदि कोई – अलग-अलग पूर्व-धारणाओं के प्रभाव को यथासंभव बाहर रखने के लिए – दोनों बाइबल-स्थानों के कथनों की तुलना से आरंभ करता है, तो वह अनिवार्य रूप से इस परिणाम पर पहुँचता है कि 1 कुरिन्थियों

14:34-35 वह पाठ-स्थान है, जो कलीसिया में स्त्री के बोलने या चुप रहने के विषय पर स्पष्ट शिक्षा-कथन देता है।

2. पाठों की तुलना के आधार पर स्पष्ट है कि 1 कुरिन्थियों 11 की व्याख्या 1 कुरिन्थियों 14 के प्रकाश में करनी होगी। इसका अर्थ है कि कलीसिया में स्त्री की सेवा के संबंध में प्रश्न का समाधान 1 कुरिन्थियों 14 की व्याख्या से आरंभ होता है।

3. 1 कुरिन्थियों 14 की व्याख्या से यह स्पष्ट आदेश निकलता है कि स्त्री कलीसिया में चुप रहे और न बोले। मौन की आज्ञा और बोलने पर प्रतिबंध में पूरी कलीसिया के सामने किसी एक व्यक्ति की सब मौखिक अभिव्यक्तियाँ शामिल हैं।

उलरिख़ प्लेच, जन्म 1956, विवाहित, एक बेटी और दो नाती-पोते, एक मसीही प्राथमिक विद्यालय के प्रधान और एक ब्रदरन कलीसिया में सह-प्राचीन हैं।

HJR की टिप्पणी: प्लेच का लेख पूर्ण मौन की आज्ञा के पक्ष में सबसे सशक्त जर्मन भाषा का तर्क है, जिसे मैं जानता हूँ। जोश के साथ और बहुत से तर्कों के साथ मौन की आज्ञा का समर्थन किया गया है। दोनों पाठों के बीच का तनाव – मैं उसे विरोधाभास कहूँगा – इस प्रकार सुलझाया गया है: पत्री में बाद वाले पाठ को व्याख्या का अधिकार मिल जाता है। कारण: अधिक स्पष्टता। यदि हमारे पास केवल ये दो पाठ होते, तो इस तर्क का अनुसरण किया जा सकता था। परन्तु इसमें एक बुनियादी भूल है: पद 34 और 35 की अधिक स्पष्टता तभी बनती है, जब 14वें अध्याय के बाकी भाग को पूरी तरह बाहर छोड़ दिया जाए – और नए नियम के उन सब दूसरे पाठों को भी, जिन्हें – यह मेरी धारणा है – बिना कहे बहनों की मौखिक भागीदारी को मानकर चलना ही पड़ता है।

कलीसियाई पिता

चार्ल्स जे. एलिकॉट (Charles J. Ellicott)

सी. जे. एलिकॉट इस पाठ की ओर संकेत करते हैं:

पद 34. αἱ γυναῖκες κ.τ.λ.] स्त्रियाँ कलीसियाओं में चुप रहें, अर्थात कलीसिया की बड़ी और सार्वजनिक सभाओं में, जिनकी ही इस अध्याय में बात है: तुलना करें पद 4, 5, 12, 16, 19, 23, 26, और देखें अध्याय 11:5 पर टिप्पणियाँ। संभव है कि प्रेरित यहाँ विशेष रूप से सार्वजनिक शिक्षा-पद के बारे में सोच रहा था: तुलना करें 1 तीमुथियुस 2:12, διδάσκειν δὲ γυναικὶ οὐκ ἐπιτρέπω। यह नियम आरंभिक कलीसिया में सावधानी से बनाए रखा गया: देखें Const. Apost. III. 6, और Conc. Carthag. IV. 99। यहूदियों में यह आराधनालय के लिए लज्जा की बात मानी जाती थी, यदि कोई स्त्री सार्वजनिक रूप से व्यवस्था पढ़ती; देखें Lightfoot, Hor. in h. l., Schoettg. Hor. p. 658।

प्रेरितिक संविधान (Apostolische Konstitutionen, पुस्तक III)

कि स्त्रियाँ शिक्षा न दें, क्योंकि यह अशोभनीय है; और कौन सी स्त्रियाँ हमारे प्रभु के पीछे चलीं।

VI. हम अपनी स्त्रियों को कलीसिया में शिक्षा देने की अनुमति नहीं देते (1 कुरिन्थियों 14:34), बल्कि केवल प्रार्थना करने और उन्हें सुनने की, जो शिक्षा देते हैं; क्योंकि हमारे गुरु और प्रभु यीशु ने स्वयं, जब उसने हम बारहों को लोगों और जातियों को चेला बनाने के लिए भेजा, कहीं भी स्त्रियों को प्रचार करने के लिए नहीं भेजा, यद्यपि उसके

पास ऐसी स्त्रियों की कमी नहीं थी। क्योंकि हमारे साथ हमारे प्रभु की माता और उसकी बहनें थीं, मरियम मगदलीनी भी और याकूब की माता मरियम भी, और लाज़र की बहनें मार्था और मरियम, सलोमी और कुछ दूसरी भी। क्योंकि यदि यह आवश्यक होता कि स्त्रियाँ शिक्षा दें, तो उसने स्वयं पहले ही उन्हें हमारे साथ लोगों को शिक्षा देने की आज्ञा दी होती। क्योंकि यदि स्त्री का सिर पुरुष है (1 कुरिन्थियों 11:3), तो यह उचित नहीं कि शेष देह सिर पर शासन करे।

श्ट्राक (Strack) और बिलरबेक (Billerbeck)

14, 34 A: स्त्रियाँ सभाओं में चुप रहें।

पुराने आराधनालय ने स्त्रियों को आराधना सभाओं में सार्वजनिक रूप से बोलने से सिद्धांत रूप में तो नहीं, परन्तु व्यवहार में अवश्य मना किया। उन्हें आराधनाओं में भाग लेना था, सुनने के लिए और तर्गुम (अरामी अनुवाद) के पाठ से आज्ञाएँ सीखने के लिए।[5]

14, 34 B: वे अधीन रहें, जैसा व्यवस्था भी कहती है।

संभवतः इन शब्दों में प्रेरित की दृष्टि उत्पत्ति 3:16 पर थी। परन्तु νόμος अभिव्यक्ति पर अधिक ज़ोर नहीं देना चाहिए। परंपरागत रीति को भी तोरा माना जाता था; तुलना करें जैसे RH 19a: परंपरा के वचन तोरा के वचनों के समान हैं।

14, 35 A: यदि वे कुछ सीखना चाहें, तो घर पर अपने-अपने पति से पूछें।

इस प्रश्न पर कोई एकमत नहीं था कि स्त्रियों को तोरा की शिक्षा दी जाए या नहीं। सामान्य धारणा शायद यह थी कि पिता पर कम से कम यह कोई दायित्व नहीं है कि वह अपनी बेटियों को पवित्रशास्त्र की शिक्षा दिलवाए।

14, 35 B: स्त्री का सभा में बोलना अपमान की बात है। तुलना करें शमूएल (Schemuël) († 254) का वचन: स्त्री का स्वर लज्जाजनक (अश्लील) है קול באשה ערוה; देखें Berakh 24a, मत्ती 5:28 पर, पृ. 299।[6]

प्रोटेस्टेंट जगत की व्याख्याएँ और स्पष्टीकरण

कैथरीन सी. बुशनेल (Katharine C. Bushnell)

कैथरीन सी. बुशनेल: Wach auf, Eva! (जागो, हव्वा! – पहली बार 1908 में प्रकाशित, जर्मन में 2020)

स्त्री की पूर्ण समानता के विषय में परमेश्वर के मूल और अपरिवर्तित उद्देश्य का बाइबल पर आधारित सत्य पहचानिए

अंशों में उद्धरण

इसके अतिरिक्त वह यह वाक्यांश प्रयोग करता है "उन्हें अनुमति नहीं दी जाती", जिसका स्पष्ट अर्थ है कि पौलुस (Paulus) से पहले दूसरों ने इस बात को मना किया था, परन्तु ऐसे प्रतिबंध का कोई निशान बाइबल में कहीं नहीं मिलता, सिवाय पौलुस के इन्हीं शब्दों के। इससे यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है: यह कहाँ और किसके द्वारा अनुमत नहीं था? उत्पत्ति 3:16 "व्यवस्था" का एकमात्र संदर्भ है जो फ़ुटनोटों में दिया जाता है, और यह दो कारणों से ठीक नहीं बैठता। (1) यदि पति अपनी पत्नियों को सार्वजनिक रूप से बोलने की आज्ञा दें, तो उन्हें बोलना ही पड़ेगा, यदि उत्पत्ति 3:16 का अर्थ यह है: "तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा।" (2) परन्तु

कुरिन्थुस की कलीसिया के बहुत कम सदस्य, यदि कोई भी, उत्पत्ति 3:16 के इस पाठ को जानते होंगे, क्योंकि वे सेप्टुआजिंट (यूनानी पुराना नियम) का संस्करण प्रयोग करते थे। पौलुस इस पत्री में लगभग केवल इसी अनुवाद को उद्धृत करता है; पुराने नियम के अपने सत्रह संदर्भों में वह केवल एक बार स्पष्ट रूप से इब्रानी पाठ को उद्धृत करता है। इसलिए कुरिन्थी इस पद को ऐसे पढ़ते: "तू अपने पति की ओर मुड़ जाती है, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा।"

इसके बाद अपने आप से पूछिए: यदि पौलुस के इस एक अकेले कथन को स्त्रियों को चुप कराने के लिए बाइबल की "व्यवस्था" के रूप में खड़ा किया जाना है, तो पुराने नियम की उन सौ और एक दूसरी "व्यवस्थाओं" का क्या होगा, जो स्त्रियों को अपना मुँह खोलने की आज्ञा देती हैं, जैसे "यहोवा के छुड़ाए हुए ऐसा ही कहें", "परमेश्वर के पवित्रस्थान में उसकी स्तुति करो!" (केवल भजनसंहिता में ही लगभग सौ बार दोहराया गया), "हे सारी पृथ्वी के लोगो, यहोवा का जयजयकार करो! आनन्दित हो और जयजयकार करो!", "देश-देश के लोगों में उसके कामों का प्रचार करो", "जितने प्राणी हैं सब के सब यहोवा की स्तुति करें!", "उसके सब आश्चर्यकर्मों की चर्चा करो!"? क्योंकि पुरुषों के लिए यह दावा प्रभावी ढंग से स्थापित करना बिलकुल असंभव है कि पुराने नियम के ये सब उपदेश और आह्वान केवल उन्हीं के लिए थे। हज़ारों वर्षों तक इसे ऐसे न समझा गया, न सिखाया गया। कुछ धार्मिक शिक्षकों का पवित्रशास्त्र के एक अकेले वाक्य की ऐसी व्याख्या के लिए यह अतिरंजित जोश, जो सौ या दो सौ दूसरे बाइबल-कथनों पर (उस एक वाक्य को दूसरों के साथ मेल में लाने के किसी भी प्रयास के बिना) प्रश्नचिह्न लगा देता है, हमें उनकी व्याख्या को बहुत जल्दबाज़ी में अपना लेने से सावधान करना चाहिए। उदाहरण के लिए, यहाँ एक अकेले वाक्य के शाब्दिक और सार्वभौमिक प्रयोग के ऐसे समर्थक, पौलुस के अधिकार के शाब्दिक और सार्वभौमिक प्रयोग के उतने ही समर्थक क्यों नहीं रहे, जहाँ वह कहता है कि अविवाहित स्त्रियों का अविवाहित रहना अच्छा है (1 कुरिन्थियों 7:8, 34-35)? परन्तु नहीं! ये आमतौर पर वही लोग होते हैं जो इस बात के लिए खड़े होते हैं कि विवाह और घरेलू कार्य ही स्त्रियों की एक और एकमात्र बुलाहट हैं। वे यह क्यों नहीं कहते कि यह वाक्य "सारी पृथ्वी उसके सामने शांत रहे!" (हबक्कूक 2:20) न केवल स्त्रियों का, बल्कि पूरी कलीसिया का मुँह बंद कर दे?

पौलुस यहाँ "इसकी अनुमति नहीं है" शब्दों में पवित्रशास्त्र के भीतर के नहीं, बल्कि बाहर के किसी नियम की ओर संकेत करता है। प्रश्न यह है कि हमें मौन का यह नियम कहाँ ढूँढना चाहिए? महान जर्मन कोशकार श्लॉइसनर (Schleusner) अपने यूनानी-लातीनी शब्दकोश में समझाते हैं: "जैसा व्यवस्था भी कहती है" अभिव्यक्ति यहूदियों की मौखिक परंपरा की ओर संकेत करती है। ये उनके शब्द हैं: "यहूदियों की मौखिक व्यवस्थाएँ या यहूदी परंपराएँ ... पुराने नियम में इस विषय में कोई आज्ञा नहीं है", और वे विट्रिंगा (Vitringa) को उद्धृत करते हैं कि "यहूदी परंपराओं द्वारा यह मना था कि स्त्रियाँ आराधनालय में बोलें।" परन्तु ज़रा सोचिए! यह तो असंभव-सा है कि प्रेरित पौलुस यहूदियों की परंपराओं को उद्धृत करे और उन्हें "व्यवस्था" कहे, जो कलीसिया के किसी विवादित मामले में अंतिम अधिकार हो। उसने अपनी ऊर्जा का एक बड़ा भाग यहूदियों की इन्हीं "परंपराओं" या रीतियों के विरुद्ध लड़ने में लगाया, ठीक वैसे ही जैसे उसके प्रभु यीशु मसीह ने। पौलुस ने चेतावनी दी कि "यहूदियों की कथा-कहानियों और उन मनुष्यों की आज्ञाओं पर मन न लगाएँ, जो सत्य से भटक जाते हैं!" (तीतुस 1:14)। नहीं, प्रेरित पौलुस यहाँ वह उद्धृत करता है जो कुरिन्थुस की कलीसिया में यहूदी-मतवादी सिखाते हैं, जो कहते हैं कि स्त्रियों को "चुप रहना ही होगा", क्योंकि यहूदी व्यवस्था ऐसा सिखाती है।

यह कि तलमुद ने, पुराने नियम के विपरीत, स्त्रियों को चुप करा दिया, इसमें कोई संदेह नहीं। "मंडली के आदर के कारण स्त्री को स्वयं व्यवस्था में से नहीं पढ़ना चाहिए।" "स्त्री के लिए पुरुषों के बीच अपना स्वर सुनाना लज्जा की

बात है।" "स्त्री का स्वर गंदी नग्नता है।" ये उसकी बहुत सी कहावतों में से कुछ हैं। जहाँ तक प्रश्न पूछने का संबंध है: एक धनी यहूदी स्त्री ने एक बार महान रब्बी एलीएज़र (R. Eliezer) से पूछने का साहस किया: "सोने के बछड़े का पाप, यद्यपि वह केवल एक था, तिहरी मृत्यु से क्यों दंडित किया जाना चाहिए?" मैं कल्पना कर सकती हूँ कि यह प्रश्न उनके ज्ञान के भंडार से परे था, क्योंकि उन्होंने उत्तर दिया: "स्त्री को अपने चरखे के अलावा किसी बात में बुद्धिमान नहीं होना चाहिए।" एक हिरकानुस (Hyrcanus) नाम के व्यक्ति ने अलग से रब्बी एलीएज़र को सोचने के लिए कहा कि जिस महिला को ऐसे डाँटा गया, वह बदले में अपना दशमांश रोक सकती थी, और वह काफ़ी बड़ी रकम होती थी। परन्तु रब्बी एलीएज़र ने उत्तर दिया: "व्यवस्था के वचनों को किसी स्त्री को सौंपने के बजाय उन्हें जला दिया जाए तो अच्छा।" यह वाक्य यहूदियों में आने वाली पीढ़ियों के लिए एक प्रकार के विधि-वाक्य के रूप में अपना लिया गया।

मैं दोहराती हूँ: मैं यह मानने के लिए विवश हूँ कि प्रेरित ने 1 कुरिन्थियों 14 के पद 34 और 35 में अपने विचार व्यक्त नहीं किए, जब उसने लिखा: "स्त्रियाँ कलीसियाओं में चुप रहें, क्योंकि उन्हें बोलने की अनुमति नहीं दी जाती, परन्तु वे अधीन रहें, जैसा व्यवस्था भी कहती है। परन्तु यदि वे कुछ सीखना चाहें, तो घर पर अपने-अपने पति से पूछें; क्योंकि स्त्री का कलीसिया में बोलना लज्जा की बात है।" मेरा विश्वास है कि यह कुरिन्थुस के यहूदी-मतवादियों की भाषा है, जिसकी सूचना पौलुस को दी गई थी और जिसे पौलुस इसलिए उद्धृत करता है ताकि इन शब्दों से उत्तर दे: "क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है? या क्या वह केवल तुम्हीं तक पहुँचा है?" और उस सब से, जो अध्याय के अंत में आता है।

हमारा मामला इन सब परखों पर खरा उतरता है। आइए इस निर्देश का अनुसरण करें और प्रोफ़ेसर रैम्ज़ी (Ramsay) के दिशानिर्देशों के तीन बिंदु लागू करें: (1) "हर बार जब पौलुस उनके ज्ञान की ओर संकेत करता है।" – पौलुस पद 37 में उनके ज्ञान की ओर संकेत करता है; और पद 38 में वह घोषित करता है: "परन्तु यदि कोई यह नहीं पहचानता, तो परमेश्वर भी उसे नहीं पहचानता।" (2) "जब कोई कथन निकटतम संदर्भ के स्पष्ट विरोध में हो।" – पद 34, 35 पद 31 और पद 39 के स्पष्ट विरोध में हैं, क्योंकि यह दावा करना बिलकुल टिक नहीं सकता कि पौलुस ने यहाँ "भाइयो" शब्द केवल पुरुष-लिंग के लिए प्रयोग किया है। (3) "जब कोई कथन पौलुस के ज्ञात विचारों के स्पष्ट विरोध में हो।" – यदि प्रेरित स्त्रियों को "चुप रहने" की आज्ञा देता, तो यह उस बात के सीधे विरोध में होता, जो स्त्रियों के घूँघट के विषय में अध्याय 11 के उसके कथनों से निष्कर्ष निकालना पड़ता है।

यहूदी-मतवादियों की इन सब नुक्ताचीनियों और यहूदियों की मौखिक परंपरा को उद्धृत करके अपने तर्कों को पुष्ट करने के उनके प्रयासों पर पौलुस का उत्तर है: "क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है? या क्या वह केवल तुम्हीं तक पहुँचा है?" फिर पद 37-40 में वह इस विषय पर अपना मत व्यक्त करता है, जो पवित्र आत्मा का मत है।

फिर प्रेरित घोषित करता है: "यदि कोई समझता है कि वह भविष्यद्वक्ता है या कोई और आत्मिक वरदान पाया हुआ है, तो वह पहचान ले कि जो मैं तुम्हें लिखता हूँ, वह प्रभु की आज्ञा है।" वह यहाँ "प्रभु की आज्ञा" को उन "मनुष्यों की आज्ञाओं" के विरोध में रखता है, जिन्हें यहूदियों की मौखिक रूप से चली आई व्यवस्था सिखाती थी। दूसरे शब्दों में, पौलुस दावा करता है कि एक सच्चा भविष्यद्वक्ता या आत्मिक व्यक्ति यह पहचान लेता कि इस मामले में उसका नियम पवित्रशास्त्र के अनुरूप था, जबकि यहूदी रब्बियों का नियम ऐसा नहीं था।

मैथ्यू हेनरी (Matthew Henry)

पद 34-35

यहाँ प्रेरित 1. स्त्रियों को सार्वजनिक सभाओं में चुप रहने की आज्ञा देता है, और वह भी इतनी कि वे कलीसिया में अपनी शिक्षा के लिए भी प्रश्न नहीं पूछ सकतीं, बल्कि उन्हें घर पर अपने पतियों से पूछना है। उन्हें पूरी शांति और अधीनता में सीखना है; परन्तु, प्रेरित कहता है, मैं अनुमति नहीं देता कि वे शिक्षा दें, 1 तीमुथियुस 2:11-12। वास्तव में एक संकेत है (अध्याय 11:5) मानो स्त्रियाँ कभी-कभी अपनी सभाओं में प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करती थीं, जिसकी प्रेरित उस भाग में सीधे निंदा नहीं करता, बल्कि उस ढंग की, जिससे वे ऐसा करती थीं, अर्थात सिर उघाड़े प्रार्थना या भविष्यद्वाणी करना, जो उस समय और उस देश में लिंगों के भेद को मिटा देता था और स्त्रियों को पुरुषों के बराबर खड़ा कर देता था। परन्तु यहाँ वह उनके हर सार्वजनिक रूप से सामने आने को मना करता प्रतीत होता है। उन्हें कलीसिया में बोलने की अनुमति नहीं है (पद 34), न प्रार्थना में, न भविष्यद्वाणी में। संदर्भ स्पष्ट रूप से बाद वाली बात को शामिल करता प्रतीत होता है, और वह भी उस सीमित अर्थ में, जिसमें इस अध्याय में इसे समझा गया है, अर्थात प्रेरणा के द्वारा उपदेश या पवित्रशास्त्र की व्याख्या के लिए। और वास्तव में, किसी स्त्री के लिए इस अर्थ में भविष्यद्वाणी करने का अर्थ शिक्षा देना होता, जो उसकी अधीनता की स्थिति से इतना मेल नहीं खाता। जो दूसरों को शिक्षा देता है, उसे इस दृष्टि से उन पर एक श्रेष्ठता प्राप्त होती है, जो स्त्री को पुरुष पर अनुमत नहीं है, और इसलिए वह कलीसिया में शिक्षा भी नहीं दे सकती: मैं उन्हें शिक्षा देने की अनुमति नहीं देता। परन्तु प्रार्थना करना और प्रेरित गीतों का बोलना शिक्षा नहीं है। और क्योंकि कलीसिया के उस युग में ऐसी स्त्रियाँ थीं जिनके पास इस प्रकार के आत्मिक वरदान थे (देखें प्रेरितों के काम 21:9) और जो सभा में इस प्रेरणा के अधीन हो सकती थीं, तो क्या उन्हें इसे पूरी तरह दबा देना चाहिए? या यदि यह वरदान कभी सार्वजनिक रूप से उपयोग ही नहीं किया जा सकता, तो उनके पास यह क्यों हो? इन कारणों से कुछ लोगों का मत है कि ये सामान्य प्रतिबंध केवल साधारण मामलों के लिए समझे जाने चाहिए, परन्तु असाधारण अवसरों पर, जब स्त्रियाँ किसी ईश्वरीय प्रभाव के अधीन हों और यह ज्ञात हो, उन्हें बोलने की स्वतंत्रता दी जा सकती है। सामान्य रूप से उन्हें न शिक्षा देनी चाहिए और न कलीसिया में वाद-विवाद करना और प्रश्न पूछना चाहिए, बल्कि वहाँ चुपचाप सीखना चाहिए और यदि कठिनाइयाँ आतीं, तो घर पर अपने-अपने पति से पूछना चाहिए। ध्यान दें: जैसे स्त्री का कर्तव्य अधीनता में सीखना है, वैसे ही पुरुष का कर्तव्य है कि वह उसे शिक्षा दे सकने के द्वारा अपनी श्रेष्ठता बनाए रखे; यदि पत्नी का कर्तव्य घर पर अपने पति से पूछना है, तो पति का दायित्व और कर्तव्य है कि वह कम से कम उसके प्रश्नों का उत्तर दे सकने का प्रयास करे; यदि उसके लिए कलीसिया में बोलना लज्जा की बात है, जहाँ उसे चुप रहना चाहिए, तो उसके (पति के) लिए यह लज्जा की बात है कि जब उसे बोलना चाहिए तब वह चुप रहे, और जब वह घर पर उससे पूछे तो कोई उत्तर न दे सके। 2. यहाँ हमारे पास इस आज्ञा का कारण है: यह परमेश्वर की व्यवस्था और आज्ञा है कि वे आज्ञाकारी रहें (पद 34); वे पुरुष के अधीन हैं, और उनके लिए कोई भी ऐसा काम करना लज्जा की बात है जो स्थान बदलने के दावे जैसा दिखे, जिसका अर्थ सार्वजनिक रूप से बोलना प्रतीत होता था, कम से कम उस युग में और उन लोगों के बीच, और सार्वजनिक शिक्षा देना तो और भी अधिक: इसलिए प्रेरित यह निष्कर्ष निकालता है कि स्त्रियों के लिए कलीसिया में, सभा में बोलना लज्जा की बात है। लज्जा मन का वह अप्रिय चिंतन है कि कोई अशोभनीय काम किया गया है। और इससे अधिक अशोभनीय क्या है कि कोई स्त्री अपना पद छोड़ दे, अपने लिंग की अधीनता त्याग दे, या कुछ ऐसा करे जो सामान्य धारणा के अनुसार ऐसा दिखे और प्रतीत हो? ध्यान दें: हमारा मन और हमारा आचरण हमारी स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। परमेश्वर ने जो स्वाभाविक भेद बनाए हैं, उनका हमें ध्यान रखना चाहिए। जिन्हें उसने दूसरों के अधीन रखा है, उन्हें स्वयं को बराबरी पर नहीं रखना चाहिए, न श्रेष्ठता का दावा करना चाहिए। स्त्री को पुरुष के अधीन किया गया, और उसे अपने स्थान पर बने रहना चाहिए और उससे संतुष्ट रहना चाहिए। इस कारण स्त्रियों को कलीसियाओं में चुप रहना है और उन्हें शिक्षक बनने का प्रयास नहीं करना है; क्योंकि यह पुरुष पर श्रेष्ठता का दावा होता।[7]

HJR की टिप्पणी: यह विचित्र है, और मुझे यह पवित्रशास्त्र में नहीं मिलता, कि शिक्षा देने में श्रेष्ठता निहित है। यह इसका एक और उदाहरण है कि इस पाठ को समझाने के लिए कैसे-कैसे तर्कों का सहारा लिया जाता है। शिक्षा देना उस वरदान के साथ सेवा करना है, जो परमेश्वर ने किसी को दूसरों के लाभ के लिए दिया है, अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं।

वॉरेन डब्ल्यू. वियर्सबी (Warren W. Wiersbe)

दूसरी बात, स्त्रियों को सभा में नहीं बोलना था (1 कुरिन्थियों 14:34-35)। पौलुस (Paulus) स्त्रियों को प्रार्थना करने और भविष्यद्वाणी करने की अनुमति पहले ही दे चुका था (1 कुरिन्थियों 11:5), इसलिए यह निर्देश भविष्यद्वाणी के संदेशों को परखने के निकटतम संदर्भ से ही संबंधित होना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि आरंभिक कलीसिया में शिक्षा की शुद्धता की मुख्य ज़िम्मेदारी पुरुषों के, विशेषकर प्राचीनों के कंधों पर थी (1 तीमुथियुस 2:11-12)।

इस प्रतिबंध का संदर्भ संकेत करता है कि सभा में कुछ स्त्रियाँ प्रश्न पूछकर और शायद झगड़ा तक पैदा करके समस्याएँ खड़ी कर रही थीं। पौलुस ने विवाहित स्त्रियों को स्मरण दिलाया कि वे अपने पतियों के अधीन रहें और अपने प्रश्नों के उत्तर घर पर पाएँ। (हम मानते हैं कि अविवाहित स्त्रियाँ प्राचीनों से या अपने परिवारों के दूसरे पुरुषों से सलाह ले सकती थीं।) दुःख की बात है कि आज बहुत से मसीही घरों में पत्नी ही है, जिसे पति के प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते हैं, क्योंकि वह परमेश्वर के वचन में अधिक शिक्षित है।

पौलुस 1 कुरिन्थियों 14:34 में किस "व्यवस्था" की ओर संकेत कर रहा था? शायद उत्पत्ति 3:16 की ओर। (व्यवस्था शब्द पुराने नियम के लेखों का, विशेषकर पहली पाँच पुस्तकों का, पर्यायवाची था।) 1 कुरिन्थियों 11 में पौलुस कलीसिया में पुरुषों और स्त्रियों के संबंध की चर्चा कर चुका था, इसलिए विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं थी।

फ़्रेडेरिक गोडे (Frédéric Godet)

प्रेरित सार्वजनिक रूप से बोलने को सुनने वाली सभा पर अधिकार चलाने का एक कार्य मानता है (तुलना करें 1 तीमुथियुस 2:12)। और क्योंकि पुरुष पर अधिकार की मनोवृत्ति आज्ञाकारिता की मनोवृत्ति के विपरीत है [...], वह यह निष्कर्ष निकालता है कि स्त्री का सार्वजनिक रूप से बोलना उस स्थान के विरुद्ध है, जो ईश्वरीय इच्छा द्वारा दिया गया है, जैसी वह व्यवस्था में व्यक्त होती है। ... आराधना में स्त्रियों का चुप रहना केवल अधीन रहने की उस सामान्य शर्त की एक अभिव्यक्ति है, जो पुरुष के संबंध में उन पर रखी गई है। ... पौलुस स्त्री के सार्वजनिक रूप से बोलने में उस मनोवृत्ति के विरुद्ध काम देखता है, जो उसे प्रकृति के द्वारा और सृष्टिकर्ता की आज्ञा के द्वारा दी गई है (तुलना करें 11:1-16)। ... स्त्रियों को ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जो निर्भरता के उस बंधन को हानि पहुँचाए, जो हर एक को उसके अपने पति के साथ जोड़ता है।

(जर्मन अनुवाद: थोमस येटल (Thomas Jettel)।)

आडोल्फ़ श्लैटर (Adolf Schlatter)

14:34-35: स्त्रियाँ कलीसिया की सभाओं में चुप रहें। क्योंकि उन्हें बोलने की अनुमति नहीं दी जाती, बल्कि वे अधीन रहें, जैसा व्यवस्था भी कहती है। परन्तु यदि वे कुछ सीखना चाहें, तो घर पर अपने-अपने पति से पूछें; क्योंकि स्त्री के लिए सभा में बोलना अपमान की बात है। उस बड़ी, भरोसे भरी स्वतंत्रता के कारण, जो उस समय मसीही सभाओं की पहचान थी और जिसके द्वारा कलीसिया में उपस्थित सब शक्तियाँ उनके लिए काम में लाई

जाती थीं, यह प्रश्न भी उठा कि क्या यह स्वतंत्रता स्त्री पर भी उसी तरह लागू होती है जैसे पुरुष पर। इस बिंदु पर भी, बहुत सी दूसरी बातों की तरह, कलीसिया को पहले अपना मार्ग खोजना पड़ा और स्वयं पहचानना पड़ा कि उसके यहाँ क्या रीति बनेगी। पौलुस ने अध्याय 11 में प्रार्थना के समय स्त्री के आचरण के बारे में जो कहा है, उसी से हम जानते हैं कि वह दोनों लिंगों की समानता का विरोध करता है। प्रकृति द्वारा उनके बीच स्थापित सीमा मसीही जगत में अटूट बनी रहनी चाहिए। यह इस प्रकार प्राप्त होता है कि सभाओं में स्त्री को बोलने की अनुमति नहीं दी जाती। अध्याय 11 में पौलुस ने यह अभी नहीं कहा, क्योंकि वहाँ वह उस अधिकार की बात नहीं कर रहा था जो सभाओं में स्त्रियों को मिलता है, बल्कि इसकी कि वे प्रार्थना या भविष्यद्वाणी के समय परमेश्वर के सामने कैसा व्यवहार करें। भविष्यद्वाणी करना आवश्यक रूप से सभा से बँधा नहीं था, और प्रार्थना के समय स्त्री जिस ढंग से व्यवहार करती है, वह तो पूरी तरह एक अलग बात है, जिसके साथ यह प्रश्न मेल नहीं खाता कि क्या उसे भी बोलना चाहिए। पौलुस ने यह नहीं कहा कि कोई स्त्री भविष्यद्वाणी की बुलाहट नहीं पा सकती। यदि परमेश्वर की विशेष आज्ञा से उसे कोई ईश्वरीय वचन कहना है, तो वह इसे सार्वजनिक भाषण के अलावा किसी दूसरे ढंग से भी कर सकती है। परन्तु जब पौलुस अध्याय 11 में कह चुका है कि अपनी सबसे ऊँची आत्मिक क्षमताओं में भी, जब वह प्रार्थना या भविष्यद्वाणी करती है, स्त्री को स्त्री की तरह व्यवहार करना है, ताकि वह स्वयं को कभी पुरुष के बराबर न बनाए और उसके साथ अपने संबंध को कभी उतार न फेंके या भूल न जाए, तो हम आसानी से यह भी समझते हैं कि उसने इसे स्त्री के लिए अपमान की बात समझा, जब वह सभाओं में पुरुषों के सामने और उनके स्थान पर बोलना चाहे। ऐसा करके भी वह ऐसा व्यवहार करती है मानो वह स्त्री नहीं, बल्कि पुरुष हो। ज्ञान के लिए उसकी लालसा में पौलुस आनंद से हर सहायता देता है; परन्तु इसके लिए कि वह परमेश्वर के वचन के स्पष्ट और गहरे ज्ञान तक पहुँचे, यह एकमात्र साधन नहीं है कि वह सभाओं में सार्वजनिक रूप से प्रश्न पूछे या भाषण दे। बल्कि जिस बात के विषय में वह स्पष्टीकरण चाहती है, उसकी चर्चा वह अपने पति से करे। वही सबसे निकट है, जिसे उसके भीतरी जीवन की सब बातों में, परमेश्वर के ज्ञान की उसकी लालसा में भी, उसकी सहायता करनी है।

14:36: या क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला, या केवल तुम्हीं तक आया? स्त्रियों के प्रश्न में भी यह महत्वपूर्ण था कि कोई एक कलीसिया मनमाने ढंग से वह न करे जो उसे ठीक लगे, बल्कि हर कलीसिया बाकी कलीसियाओं के साथ एकता बनाए रखे और मसीही जगत की एक सामान्य, हर जगह लागू होने वाली रीति के बनने में सहायता करे। कुरिन्थी तब कुछ औचित्य के साथ दूसरों का ध्यान रखने से इनकार कर सकते थे, यदि वे पहली कलीसिया होते, जिससे बाकी सब ने सुसमाचार पाया, या यदि वे एकमात्र कलीसिया होते। परन्तु अब, क्योंकि वे न पहली हैं और न एकमात्र कलीसिया, इसलिए जिसे दूसरी कलीसियाएँ उचित और शोभनीय मानकर पालन करती हैं, वह उन पर भी लागू होता है।[8]

विलियम बार्कले (William Barclay)

पूरी संभावना है कि पौलुस के मन में सबसे बढ़कर कुरिन्थुस की ढीली नैतिक स्थिति थी और यह भावना कि बिलकुल ऐसा कुछ नहीं किया जाना चाहिए, जो नई कलीसिया को अनैतिकता के हल्के से हल्के संदेह में भी डाल सके। इन शब्दों को संदर्भ से अलग करके कलीसिया के लिए एक सामान्य नियम बना देना निश्चय ही बहुत गलत होगा।

पौलुस एक निश्चित कठोरता के साथ बोलना जारी रखता है। उसे पूरा निश्चय है कि किसी मनुष्य को, चाहे उसके पास आत्मिक वरदान हों, अधिकार के विरुद्ध विद्रोह करने का कोई हक़ नहीं है। वह जानता है कि जो सलाहें

उसने दी हैं और जो नियम उसने स्थापित किए हैं, वे यीशु मसीह और उसके आत्मा से आते हैं, और यदि कोई मनुष्य उन्हें समझने से इनकार करता है, तो उसे अपनी जान-बूझकर ओढ़ी हुई अज्ञानता में ही रहना होगा।

लियोन मॉरिस (Leon Morris)

Morris, L., 1 Corinthians: an introduction and commentary, VII, Tyndale New Testament Commentaries

34-35. यदि "जैसा पवित्र लोगों की सब कलीसियाओं में है" (तुलना करें 4:17) इस पद से संबंधित है, तो पौलुस (Paulus) कुरिन्थियों से कहता है कि वे मान्य मसीही प्रथा के अनुरूप चलें। यदि स्त्रियाँ शिक्षकों की भूमिका अपना लेतीं, तो अधिकतर लोगों की दृष्टि में मसीही विश्वास की साख गिर जाती। यूनानियों में तो स्त्रियों को सार्वजनिक रूप से कुछ कहना भी मना था। प्लूटार्क (Plutarch) कहता है कि सद्गुणी स्त्री को "विनम्र होना चाहिए और बाहर वालों के सामने कुछ कहने से बचना चाहिए" (वर और वधू के लिए सलाहें, 31); इसके अतिरिक्त "स्त्री को या तो अपने पति के साथ या अपने पति के द्वारा बोलना चाहिए" (वही, 32)। पौलुस उनसे रीतियों का ध्यान रखने को कहता है। परन्तु वह इससे भी अधिक करता है। वह व्यवस्था की ओर संकेत करता है, ताकि उन्हें स्मरण दिलाए कि उन्हें अधीन रहना है (वह यह नहीं जोड़ता: "अपने पतियों के"; वह एक सामान्य स्थिति की बात कर रहा है, तुलना करें इफिसियों 5:21)। अधिकतर लोग सोचते हैं कि उसके मन में उत्पत्ति 3:16 है (यद्यपि वह उत्पत्ति 1:26 आदि और 2:21 आदि के बारे में भी सोच सकता था)। कलीसियाओं में स्त्रियों का चुप रहना कुछ हद तक एक समस्या है। क्योंकि पौलुस ने उनके प्रार्थना करने या भविष्यद्वाणी करने को स्वीकार किया है (11:5), इसलिए उनके बोलने के विरुद्ध नियम पूर्ण नहीं है (तुलना करें प्रेरितों के काम 2:18 आदि; 21:9)। मॉफ़ैट (Moffatt) का मत है कि पौलुस ने "किसी भक्त स्त्री को कभी मना नहीं किया कि वह सार्वजनिक आराधना में भी भविष्यद्वाणी का वह वरदान उपयोग करे, जो आरंभिक कलीसिया में बहुत सी स्त्रियों के पास था।" वे इस प्रतिबंध को ऐसे समझते हैं कि यह "उन स्त्रियों से संबंधित है, जो उस बात की चर्चा या व्याख्या में भाग लेती हैं जो आराधना के समय किसी भविष्यद्वक्ता या शिक्षक ने कही" (ग्रूडेम (Grudem), पृ. 249-251, मूल रूप से सहमत हैं, जैसे थ्रॉल (Thrall) और दूसरे भी)। एरिंग (Héring) "एक प्रचार करने वाली स्त्री ... और एक ऐसी स्त्री के बीच, जो केवल कलीसिया की एक सामान्य सदस्य के रूप में आराधना में उपस्थित है, एक स्पष्ट भेद" पाते हैं। जी. डेलिंग (G. Delling) यहाँ "मनमाने बोलने की रोकथाम" देखते हैं (TDNT, viii, पृ. 43)। कैल्विन (Calvin) ने पौलुस को ऐसे समझा कि एक स्त्री सार्वजनिक रूप से बोल तो सकती है, परन्तु किसी नियमित आराधना में नहीं बोल सकती। हमें ध्यान रखना चाहिए कि पहली शताब्दी में स्त्रियाँ अशिक्षित थीं। यहूदी किसी स्त्री को शिक्षा देना पाप मानते थे, और दूसरी जगहों पर स्थिति बहुत बेहतर नहीं थी। कुरिन्थ की स्त्रियों को कलीसिया में चुप रहना था, चाहे केवल इसलिए कि उनके पास कहने के लिए बहुत कम या कुछ भी सार्थक न होता। इस बात पर उतनी बार ध्यान नहीं दिया जाता जितना देना चाहिए, कि मसीही विश्वास आरंभ से ही यह मानकर चलता था कि स्त्रियाँ पुरुषों जितनी ही स्वतंत्रता से सीखें (तुलना करें लूका 10:39-42)। पौलुस को यहाँ इस बात से मतलब है कि स्त्रियाँ किस ढंग से सीखें। वह इसके पक्ष में तर्क नहीं देता; वह इसे स्वाभाविक मानकर चलता है। वह बस कहता है कि वे अपने प्रश्न घर पर अपने पतियों से पूछें और सभा में बाधा न डालें। यह शालीनता के विरुद्ध होता; यह लज्जा की बात होती (वही शब्द जो 11:6 में है), जिसे बुल्टमान (Bultmann) "वह, जो मनुष्यों के निर्णय के अनुसार लज्जाजनक है" के रूप में समझते हैं (TDNT, i, पृ. 190)।

36. यह संकेत करता प्रतीत होता है कि यह प्रथा कुरिन्थुस में वास्तव में हो रही थी। पौलुस को एक से अधिक बार कुरिन्थियों के घमंड की शिकायत करने का अवसर मिला। स्पष्ट है कि वे नए मार्ग अपनाने में स्वतंत्र अनुभव करते थे, जिनका औचित्य केवल मसीही बातों की उनकी अपनी समझ से ठहरता था। ऐसी मनोवृत्ति को देखते हुए पौलुस व्यंग्य से पूछता है कि क्या परमेश्वर के वचन का पार्थिव स्रोत कुरिन्थी हैं, या क्या वह केवल उन तक आया है। उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि केवल वे ही जानते हैं कि मसीही क्या है। उन्हें "पवित्र लोगों की सब कलीसियाओं" की रीतियों और सोच का ध्यान रखना होगा (पद 33)।[9]

बेन विदरिंगटन तृतीय (Ben Witherington III)

Conflict and Community in Corinth: A Socio-Rhetorical Commentary on 1 and 2 Corinthians

भविष्यद्वाणियों को परखते समय कुछ स्त्रियाँ, शायद विवाहित स्त्रियाँ, जो शायद स्वयं भविष्यद्वक्तिनें थीं और इसलिए कही गई बात को परखने का अधिकार रखती थीं, प्रश्न पूछती थीं, शायद अनुचित प्रश्न, और आराधना में बाधा पड़ती थी। पौलुस पद 34 आदि में चेतावनी देता है कि मसीही आराधना को प्रश्न-उत्तर के दौर में न बदला जाए। अन्यजातियों की भविष्यद्वाणी की ऊपर की गई चर्चा को देखते हुए बहुत संभव है कि ये स्त्रियाँ यह मानकर चल रही थीं कि मसीही भविष्यद्वक्ता या भविष्यद्वक्तिनें डेल्फ़ी की देववाणी (ओरेकल) की तरह काम करते हैं, जो केवल प्रश्नों पर ही भविष्यद्वाणी करती थी, जिनमें शुद्ध रूप से व्यक्तिगत मामलों के प्रश्न भी शामिल थे। पौलुस तर्क देता है कि मसीही भविष्यद्वाणी भिन्न है: भविष्यद्वक्ता और भविष्यद्वक्तिनें पवित्र आत्मा की प्रेरणा के उत्तर में बोलते हैं, बिना इसके कि कोई मनुष्य बातों को उकसाए/भड़काए। फिर पौलुस ऐसे प्रश्नों को एक दूसरे स्थान तक, अर्थात घर तक, सीमित कर देता है। संभव है कि वह यह संकेत करता है कि जिस पति या पुरुष से पूछना है, वह या तो भविष्यद्वक्ता था या कम से कम ऐसे प्रश्नों का उत्तर किसी अधिक उपयुक्त समय पर देने में सक्षम था।

कीनर (Keener) शायद सही हैं, जब वे कहते हैं कि यहाँ बात एक शैक्षिक समस्या की है। प्रश्न पूछने वाले मसीह की पाठशाला में अभी इतने शिक्षित नहीं थे कि जानें कि मसीही आराधना में क्या उचित है और क्या नहीं। पौलुस उनके सीखने के अधिकार की पुष्टि करता है, परन्तु एक दूसरे संदर्भ की ओर संकेत करता है। हर हाल में पौलुस एक विशेषाधिकार के दुरुपयोग को सुधारता है, और सभा में बोलने के स्त्री के उस अधिकार को वापस नहीं लेता, जो वह अध्याय 11 में पहले ही दे चुका है।

क्रेग एल. ब्लॉमबर्ग (Craig L. Blomberg)

The NIV Application Commentary: From Biblical Text … to Contemporary Life

जैसे 11:2-16 में, वैसे ही जिन स्त्रियों को पौलुस चुप कराता है, वे केवल पत्नियाँ ही हो सकती हैं। इससे समझ में आता कि वे कलीसिया की भविष्यद्वाणियों पर सार्वजनिक रूप से प्रश्न क्यों नहीं उठा सकतीं, बल्कि उन्हें घर पर "अपने-अपने पति" से सलाह लेनी है (पद 35, निश्चय ही पतियों की ओर संकेत, जैसा NIV में है)। अन्यथा वे कलीसिया में अपने पतियों को ऐसे ढंग से चुनौती दे सकती थीं, जो उनके प्रति उनकी परमेश्वर द्वारा ठहराई गई अधीनता के विरुद्ध होता (पद 34)। "व्यवस्था" पुराने नियम के किसी विशेष स्थान की ओर संकेत नहीं कर सकती, जो स्त्रियों को सार्वजनिक आराधना में चुप रहने का आदेश देता हो, क्योंकि ऐसा कोई स्थान नहीं है। शायद यह उत्पत्ति 3:16 की ओर भी संकेत नहीं करती, क्योंकि पौलुस किसी और स्थान पर पतन के परिणामों को वांछनीय मसीही आचरण के कारण के रूप में प्रस्तुत नहीं करता। बल्कि वह शायद उत्पत्ति 2 में सृष्टि के क्रम और उद्देश्य की ओर संकेत करता है, जैसे उसने 11:8-9 में अपने सिर के प्रति स्त्रियों के आदर के संबंध में किया।

रॉय ई. सियाम्पा (Roy E. Ciampa) और ब्रायन एस. रॉसनर (Brian S. Rosner) (G. K. Beale / D. A. Carson [सं.] में)

Commentary on the New Testament use of the Old Testament

नए नियम में पुराने नियम के प्रयोग पर टीका

14:33-35 पौलुस कहता है कि स्त्रियाँ (या पत्नियाँ) कलीसिया की सभा के समय चुप रहें; उन्हें बोलने की अनुमति नहीं है, और उन्हें अधीन रहना है, "जैसा व्यवस्था कहती है" (पाठ की समस्याओं के लिए देखें Niccum 1997; Thiselton 2000: 1148-50)। पौलुस का यह अर्थ नहीं हो सकता कि स्त्रियाँ बिलकुल भी नहीं बोल सकतीं, क्योंकि अध्याय 11 में वह आराधना में प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करने के उनके अधिकार की चर्चा करता है (इसके प्रमाणों के लिए कि चुप रहने का प्रकार संदर्भ पर निर्भर होना चाहिए, देखें Grudem 1982: 242-44)। शायद उसका अर्थ या तो यह है कि स्त्रियाँ दूसरों के भविष्यद्वाणी के संदेशों को परखने/आँकने में भाग न लें (ऐसा Grudem 1982; Carson 1987: 129 [तुलना करें 14:29]; या शायद विशेषकर वे संदेश, जो उनके अपने पतियों ने बोले हों? (तुलना करें 14:35)), या यह कि उन्हें बाधा डालने वाली गपशप या अनुचित बातचीत से दूर रहना है (ऐसा Paige 2002), शायद विशेषकर दूसरे पुरुषों के साथ (तुलना करें 14:35: "वे अपने-अपने पति से पूछें [tous idious andras]")।

"व्यवस्था" की शिक्षा की ओर पौलुस के संकेत के पीछे शायद उत्पत्ति की सृष्टि-कथाएँ हैं, पुरुष और स्त्री के संबंधों में क्रम और शालीनता के लिए उनके निहितार्थों के साथ (तुलना करें Thiselton 2000: 1153-54; Bruce 1980: 136; Carson 1987: 129; Keener 1992: 86-87; ऊपर 1 कुरिन्थियों 11:2-16 पर टिप्पणी भी देखें)। कुछ लोगों का मत है कि पौलुस उत्पत्ति 3:16 की ओर और वहाँ स्त्री से कही गई इस बात की ओर संकेत करता है कि उसका पति उस पर प्रभुता करेगा (तुलना करें 4Q416 2 IV, 1-8)। परन्तु इस पाठ में बात एक ऐसी प्रभुता की है जो पतन के शाप से निकलती है (परन्तु देखें Grudem [1982: 253-54], जिनका मत है कि स्रोत उत्पत्ति 2:18-23 के साथ जुड़ा हुआ उत्पत्ति 3:16 है)। बहुत से लोग इस पाठ को ऐसे समझते हैं कि यह स्त्रियों को (तब और आज) "पुरुषों पर कलीसिया द्वारा मान्य शिक्षा-अधिकार" प्राप्त करने से मना करता है (जैसे Carson 1987: 130)। दूसरों का विश्वास है कि पौलुस इससे यह कहना चाहता है कि पवित्रशास्त्र सिखाता है कि आराधना के वातावरण में आदर और क्रम बनाए रखना कितना महत्वपूर्ण है (यहाँ विशेषकर अपने पतियों के प्रति स्त्रियों का आदर), परन्तु यह सिद्धांत उन संस्कृतियों में बिलकुल भिन्न ढंग से लागू किया जा सकता है, जहाँ पतियों और पत्नियों से सामाजिक अपेक्षाएँ पौलुस के संसार की अपेक्षाओं से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं।[10]

एंथनी सी. थिसेल्टन (Anthony C. Thiselton)

The First Epistle to the Corinthians: A Commentary on the Greek Text

33b-34 अनुवाद के बारे में निर्णय करना अत्यंत कठिन हो जाता है, क्योंकि यह पौलुस (Paulus) की इस धारणा से अटूट रूप से जुड़ा है कि कुरिन्थ के पाठक σιγάτωσαν (वे चुप रहें; वे शांत रहें; वे बोलना बंद करें; वे बीच में न टोकें) और λαλεῖν (बोलना, अभी बताए गए ढंग से बोलना, उस ढंग से बोलना जैसे वे बोलते हैं) जैसे शब्दों की व्याख्या करेंगे और उन्हें उस परिस्थिति-संदर्भ के अनुसार समझेंगे, जो लेखक और पाने वालों दोनों को ज्ञात था। यहाँ केवल शब्दकोश के शब्द-चयन पर आधारित एक "अमूर्त" अनुवाद वास्तव में संदर्भ से मिलने वाली समझ के विरुद्ध जा सकता है।

बहुत से लोग तर्क देते हैं कि पद 34-35 कुरिन्थ का एक नारा या कुरिन्थ के धर्मविज्ञान का एक अंश प्रस्तुत करते हैं, जिसे पौलुस उद्धृत करता है ताकि फिर उसे अस्वीकार करे। ऐसा मत दूर की कौड़ी नहीं है, क्योंकि पौलुस ठीक यही 6:12; 7:1; 10:23 में और शायद दूसरी जगहों पर भी (जैसे 8:1-6 में) करता प्रतीत होता है।

क्या पौलुस कुरिन्थ का कोई ऐसा मत उद्धृत करता है, जिसे वह अस्वीकार करता है?

डी. डब्ल्यू. ओडेल-स्कॉट (D. W. Odell-Scott) को शायद सबसे अधिक इस मत के साथ जोड़ा जाता है, 1983 के एक लेख में भी और 1987 में जेरोम मर्फ़ी-ओ'कॉनर (Jerome Murphy-O'Connor) को दिए गए एक और उत्तर में भी। परन्तु मानुस (Manus), फ़्लैनगन (Flanagan) और स्नाइडर (Snyder) तथा एलिसन (Allison) भी इस मत के रूप प्रस्तुत करते हैं (नीचे देखें)। ओडेल-स्कॉट पद 36 के आरंभ में मुख्य निपात ἤ ("या") में उस रूढ़िवादी पितृसत्तात्मक प्रभुत्व का एक प्रभावशाली आलंकारिक उत्तर देखते हैं, जिसे कुरिन्थ का एक समूह पद 34-35 के शब्दों में व्यक्त करता है: "या क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है?" (पद 36)। ओडेल-स्कॉट के अनुसार इसे पद 34-35 के एक ज़ोरदार खंडन के रूप में समझा जा सकता है, जिससे पाठ सार्वजनिक सभा में बोलने के स्त्रियों के अधिकार का दृढ़ता से समर्थन करता है।

(d) विदरिंगटन (Witherington) के साथ हमारा मत है कि जिस बोलने की बात की गई है, वह भविष्यद्वक्ताओं के वचनों को परखने या तौलने की गतिविधि को दर्शाता है, विशेषकर सार्वजनिक रूप से भविष्यद्वक्ता के धर्मविज्ञान या यहाँ तक कि उसकी जीवन-शैली के बारे में कुरेदने वाले प्रश्न पूछकर। यह विशेष रूप से नाज़ुक और समस्यापूर्ण होता, यदि पत्नियाँ अपने पतियों से उस बोलचाल और आचरण के बारे में जिरह करतीं, जो भविष्यद्वाणी का संदेश सुनाने के दावे की सच्चाई को सहारा देते या कमज़ोर करते, और इससे आसानी से समझ में आता कि पौलुस एक विशेष प्रकार के प्रश्नों को घर के लिए क्यों सुरक्षित रखता है। इस स्थिति में स्त्रियाँ (i) सार्वजनिक रूप से अपने पतियों की न्यायी बनकर काम करतीं; (ii) आराधना को एक लंबी चर्चा-मंडली में बदल देने का जोखिम उठातीं, जिसमें शायद निजी हित भी होते; (iii) नियंत्रित और संयमित वाणी की उस नैतिकता के विरुद्ध लड़तीं, जिसके ढाँचे में कलीसिया को उत्सुकता से एक दूसरे को संबोधित करने के बजाय चुपचाप परमेश्वर की सुननी थी; और (iv) सृष्टि और संसार में परमेश्वर के कार्य के क्रम के प्रति आदर की उस भावना को भंग करतीं, जो उस गड़बड़ी के सामने है जो परमेश्वर के आत्मा की सृजनात्मक गतिविधि से पहले थी।

पॉल एलिस (Paul Ellis)

मौन रानी (Die schweigende Königin) (Kindle-स्थान 1319-1323)।

10. क्या स्त्रियों को कलीसिया में चुप रहना चाहिए?

मैं एक ऐसी कलीसिया की कल्पना करता हूँ, जिसमें स्त्रियाँ चुप हैं। वे गाती नहीं, वे बाइबल में से पढ़कर नहीं सुनातीं और वे सार्वजनिक प्रार्थना में भाग नहीं लेतीं। वे अपने मित्रों को नमस्कार नहीं करतीं और न अपने पड़ोसी की ओर मुड़कर नमस्ते कहती हैं। जब पास्टर पूछता है: "क्या मुझे एक 'आमीन' मिल सकता है?", तो वे उसे नहीं देतीं। इसके बजाय वे मौन रहती हैं। मैं ऐसी कोई कलीसिया नहीं जानता, और फिर भी यह प्रेरित पौलुस का आदर्श प्रतीत होता है, जिसने कहा: "स्त्रियाँ कलीसियाओं में चुप रहें।"

यूनानियों को अच्छा लगता था जब उनकी स्त्रियाँ चुप रहतीं, और यहूदी रब्बियों और ज्ञानियों को भी।

परन्तु पौलुस का क्या? क्या प्रेरित ने यह नहीं कहा: "तुम सब भविष्यद्वाणी कर सकते हो" और "मैं चाहता हूँ कि तुम सब अन्य भाषाओं में बोलो"? क्या उसने कुरिन्थियों से नहीं कहा: "जब तुम इकट्ठे होते हो, तो तुम में से हर एक कोई गीत, कोई वचन, कोई अन्य भाषा, कोई अर्थ बताना ला सकता है"? जब तुम में से आधे लोगों को चुप रहना है, तो तुम में से हर एक गीत और वचन कैसे ला सकता है? जब स्त्रियों को चुप रहना है, तो सब भविष्यद्वाणी कैसे कर सकते हैं?

इस प्रश्न में पवित्रशास्त्र शीशे की तरह स्पष्ट है:

बाइबल के वे स्थान, जो संकेत करते हैं कि स्त्रियाँ कलीसिया में बोल सकती हैं:

प्रेरितों के काम 1:14; 2:4, 17-18; 4:31; 21:9; रोमियों 12:6; 16:1, 3, 6, 12; 1 कुरिन्थियों 12:7, 11, 27; 14:5, 26-27, 29, 31, 39; 2 कुरिन्थियों 5:17; इब्रानियों 5:12; 1 पतरस 2:9; 4:10-11

बाइबल के वे स्थान, जो संकेत करते हैं कि वे नहीं बोल सकतीं: 1 कुरिन्थियों 14:34

नया नियम स्त्रियों के लिए इन प्रोत्साहनों से भरा है कि वे अपनी बात कहें और कलीसिया के सामुदायिक जीवन में पूरी तरह भाग लें, और किसी ने यह ढोल पौलुस से अधिक ज़ोर से नहीं बजाया। तो फिर वह अचानक अपना सुर क्यों बदलता है और कुरिन्थ की स्त्रियों से कहता है कि वे चुप रहें? वह ऐसा नहीं करता। उसके शब्दों को संदर्भ में पढ़िए, और आप पाएँगे कि वह ऐसा कुछ भी नहीं कहता।

संदर्भ का स्पष्टीकरण

यह पवित्रशास्त्र के उन स्थानों में से एक है, जहाँ संदर्भ सब कुछ स्पष्ट कर देता है। कुरिन्थ की कलीसिया में दो प्रकार की स्त्रियाँ थीं: कुछ यूनानी थीं, दूसरी यहूदी। अरस्तू (Aristoteles) और दूसरों के कारण यूनानी स्त्रियों को नागरिक क़ानून द्वारा सार्वजनिक सभाओं में बोलना मना था, और पौलुस ठीक इसी क़ानून की ओर संकेत कर रहा था। यूनानी अधिकारी थे, वह नहीं, जो कहते थे कि स्त्रियों को चुप रहना है। परन्तु कुरिन्थ की कलीसिया में यहूदी स्त्रियाँ भी थीं, इसलिए संभव है कि पौलुस किसी यहूदी व्यवस्था की ओर संकेत कर रहा था। वह उन रब्बी शिक्षाओं की ओर संकेत कर रहा हो सकता था, जिन्हें बाद में तलमुद में संहिताबद्ध किया गया: पौलुस: स्त्रियों के लिए सभा में बोलना लज्जा की बात है। तलमुद: स्त्री के लिए पुरुषों के बीच अपना स्वर सुनाना लज्जा की बात है। रब्बियों के अनुसार आदर्श स्त्री शांत और अलक्षित थी। आराधनालय में वह चुपचाप बैठी रहती थी, जबकि पुरुष बोलने का काम सँभालते थे। किसने कहा कि स्त्रियों को चुप रहना है? यहूदियों और यूनानियों ने कहा। परन्तु पौलुस ने यह कभी नहीं कहा।

पौलुस ने कभी नहीं कहा कि स्त्रियाँ कलीसियाओं में चुप रहें; कुरिन्थियों ने कहा। ऊपर का अंश एक उद्धरण है। उसे उद्धरण-चिह्नों में होना चाहिए, क्योंकि पौलुस उसे उद्धृत करता है। वह दोहराता है जो उन्होंने कहा था – कि स्त्रियों को बोलने की अनुमति नहीं होनी चाहिए, जैसा यूनानी और यहूदी क़ानून निर्धारित करते हैं –, इससे पहले कि वह अपना उत्तर दे: "क्या? क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है? या क्या वह केवल तुम तक आया है?" दूसरे शब्दों में: "क्या तुम पागल हो गए हो? क्या तुम सोचते हो कि जब तुम स्त्रियों को चुप रहने की आज्ञा देते हो, तो तुम पिता के हृदय से बोल रहे हो? क्या तुम्हें विश्वास है कि तुमने परमेश्वर से सुना है?" इस पागलपन भरे सुझाव ने कि कलीसिया का आधा भाग चुप रहे, पौलुस को क्रोधित कर दिया। उसके उत्तर को चिल्लाते हुए लगभग सुना जा सकता है। कम से कम सुना जा सकता, यदि अंग्रेज़ी बाइबलें उसे ठीक-ठीक प्रस्तुत करतीं। ध्यान दीजिए कि पौलुस का उत्तर अलग-अलग बाइबलों में कैसे दिखाई देता है:

NIV: या क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है?

AKJV: क्या कहा? क्या परमेश्वर का वचन तुझ में से निकला है?

पौलुस एक "क्या?!" के साथ फट पड़ता है, परन्तु कुछ बाइबलें इस महत्वपूर्ण शब्द को छोड़ देती हैं। हमें पौलुस के आक्रोश की गर्मी को अनुभव करना चाहिए। वह विश्वास नहीं कर पा रहा कि वह क्या सुन रहा है। यदि कुरिन्थी सोचते हैं कि स्त्रियों को चुप रहना चाहिए, तो उन्होंने सामूहिक रूप से अपनी बुद्धि खो दी है।

पौलुस का आक्रोश "The Source New Testament" (Ann Nyland) अनुवाद में पूरी तरह व्यक्त होता है: पूरी बकवास! क्या परमेश्वर का वचन तुम से आया है? पूरी मूर्खता! क्या तुम ही अकेले हो, जिन तक वह पहुँचा है?

थोमस शिरमाखर (Thomas Schirrmacher)

1 कुरिन्थियों 14:34-35 के वे पद भी, जिन्हें परंपरागत रूप से कलीसिया की सभाओं में स्त्रियों के लिए मौन की आज्ञा के रूप में समझा गया है[11], कुरिन्थियों के मत के उद्धरण या प्रस्तुतीकरण के रूप में समझे गए हैं, क्योंकि एक ओर वे थोड़ा पहले के इस कथन से मेल खाते नहीं लगते कि "तुम सब एक-एक करके भविष्यद्वाणी कर सकते हो" (1 कुरिन्थियों 14:31), और दूसरी जगह स्त्रियों को भविष्यद्वाणी और प्रार्थना करने की अनुमति है (1 कुरिन्थियों 11:13; तुलना करें 11:5), और दूसरी बात, अगले पद को तब पुरुषों के लिए खंडन और चेतावनी के रूप में समझा जा सकता है: "या क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है, या केवल तुम्हीं तक आया है?" (1 कुरिन्थियों 14:36) तब पूरे पाठ का अनुवाद इस प्रकार करना होगा:

"क्योंकि परमेश्वर अव्यवस्था का [परमेश्वर] नहीं, परन्तु शान्ति का [परमेश्वर] है, जैसा [यह] पवित्र लोगों की सब कलीसियाओं में [लागू होता है]।

तुम्हारी स्त्रियाँ कलीसियाओं में चुप रहें, क्योंकि उन्हें [तुम्हारे द्वारा] बोलने की अनुमति नहीं दी जाती, परन्तु वे अधीन रहें, जैसा व्यवस्था भी कहती है। परन्तु यदि वे कुछ सीखना चाहें, तो घर पर अपने-अपने पति से पूछें, क्योंकि स्त्री का कलीसिया में बोलना लज्जा की बात है।

या क्या परमेश्वर का वचन तुम [पुरुषों या कुरिन्थियों] में से निकला है, या केवल तुम्हीं तक आया है?" (1 कुरिन्थियों 14:33-36)

[मैंने 1 कुरिन्थियों 14:33b "जैसा पवित्र लोगों की सब कलीसियाओं में" को 1 कुरिन्थियों 14:33a के साथ जोड़ा है। डैनियल सी. एरिकिया (Daniel C. Arichea) और दूसरों के साथ मैं यह मानकर चलता हूँ कि 1 कुरिन्थियों 14:33b हर हाल में पिछले वाक्य से संबंधित होना चाहिए, 14:34a से नहीं, क्योंकि अन्यथा 'सब कलीसियाओं में' और 'कलीसिया में' (14:33b; 14:34a) अभिव्यक्ति एक ही वाक्य में दो बार आती।[12] वे इस ओर संकेत करते हैं कि बहुत से बाइबल-अनुवादों ने इसे ऐसे ही देखा है, जिनमें वह अंग्रेज़ी King James Version (KJV) भी है, जिस पर आधुनिक युग-भावना के प्रभाव का 'संदेह नहीं किया जा सकता'।]

उद्धरण-सिद्धांत के कुछ समर्थकों का संक्षिप्त परिचय दिया जाए[13]। नील एम. फ़्लैनगन (Neal M. Flanagan) और एडविना हंटर स्नाइडर (Edwina Hunter Snyder) के लिए इसमें एक महत्वपूर्ण भूमिका इस बात की है **कि पौलुस (Paulus) इस पद में पुल्लिंग रूप में लिखता है। यदि पौलुस ने 1 कुरिन्थियों 14:36 में वास्तव में स्त्रियों को संबोधित किया होता, तो क्या उसे उन्हें स्त्रीलिंग रूप में संबोधित नहीं करना पड़ता?**[14]

डैनियल सी. एरिकिया और क्रिस उकाचुक्कु मानुस (Chris Ukachukwu Manus) ने दिखाया है कि 1 कुरिन्थियों 14:36 में 'e' (ἤ) पहले कही गई बात के प्रति एक तीव्र विरोध आरंभ करता है (जैसे 1 कुरिन्थियों 11:22)।[15]

रॉबर्ट डब्ल्यू. एलिसन (Robert W. Allison) ने इसके अतिरिक्त 1 कुरिन्थियों 14:34 में व्यवस्था का सहारा लेने के प्रश्न पर विचार किया है। वे इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि पुराने नियम की व्यवस्था में स्त्रियों के लिए चुप रहने का कोई आदेश नहीं है, परन्तु 1 कुरिन्थियों 14:34 का निष्कर्ष पूरी तरह उत्पत्ति 3:16 की रब्बी व्याख्या के अनुरूप है[16], जिसे हम आरंभ में तलमुद के आधार पर पहले ही जान चुके हैं और जो 1 कुरिन्थियों 11:2-16 में भी प्रतिबिंबित हुई है, परन्तु उस शिक्षा का खंडन करती है जो यीशु और पौलुस ने पुराने नियम से प्राप्त की।

जॉयस हार्पर (Joyce Harper) और जॉन ए. एंडरसन (John A. Anderson) यह मानकर चलते हैं कि व्यवस्था का सहारा तलमुद में स्त्री के बोलने पर पूर्ण प्रतिबंध के अनुरूप है, और यहाँ पौलुस व्यवस्था का सहारा नहीं लेता, बल्कि यहूदी शिक्षक अनुचित रूप से व्यवस्था की अपनी व्याख्या का सहारा लेते हैं[17]। वे तलमुद को इन शब्दों में उद्धृत करते हैं:

"स्त्री के लिए पुरुषों के बीच अपना स्वर सुनाना लज्जा की बात है।"[18]

एस. आलेन (S. Aalen) ने इसी मत का आधार इस संकेत से देना चाहा कि 'इसकी अनुमति नहीं है' वाक्यांश एक रब्बी सूत्र है[19], जिससे रब्बी चीज़ों की अनुमति देते और उन्हें मना करते थे।

गिल्बर्ट बिलेज़िकियन (Gilbert Bilezikian) इस बात के पक्ष में, कि 1 कुरिन्थियों 14:34-35 में कुरिन्थियों का एक उद्धरण है, दूसरे तर्कों के साथ ये तर्क देते हैं[20]: 1) विषय का अचानक बदल जाना[21]; 2) अन्यथा 1 कुरिन्थियों 11:2-16 के साथ पैदा होने वाला विरोधाभास[22]; 3) पाठ का संदर्भ, जिसके अनुसार सब आराधना में भाग लें (1 कुरिन्थियों 14:31) और सब वरदानों की लालसा रखें (1 कुरिन्थियों 14:39)[23]; 4) यह कि पौलुस कभी व्यवस्था का सहारा नहीं लेता[24] – एक ऐसा कथन जो निश्चय ही इस रूप में टिक नहीं सकता और अगले तर्क के साथ मेल नहीं खाता; 5) यह कि स्त्री के चुप रहने के विषय में पुराने नियम में कोई कथन नहीं है[25]; 6) यह कि 1 कुरिन्थियों 14:36 में यूनानी 'e' एक तीव्र विरोध आरंभ करता है[26] और 1 कुरिन्थियों में इसके बहुत से उदाहरण हैं (1 कुरिन्थियों 6:1-2; 6:9; 6:16; 6:19; 9:6; 9:8; 10:22; 11:13; 14:36)[27]; 7) 1 कुरिन्थियों 14:35 के स्त्रीलिंग से 1 कुरिन्थियों 14:36 के मध्यम पुरुष पुल्लिंग में अचानक बदलाव[28] और अंत में 8) 1 कुरिन्थियों में ऐसे ही बहुत से उद्धरणों का होना (उनके अनुसार: 1 कुरिन्थियों 1:12; 3:4; 6:12=10:23; 6:13; 6:18; 7:1; 8:1; 8:4; 8:8)[29]।

सी. एच. टैलबर्ट (C. H. Talbert) 1 कुरिन्थियों 14 में उद्धरण-सिद्धांत के कारणों[30] का सारांश इसी तरह देते हैं:

"दो तर्क इस समझ को संभावित बनाते हैं। पहला, पद 36 में 'केवल' (monous) अनूदित शब्द पुल्लिंग बहुवचन में है। इसके लिए 'केवल तुम पुरुष' जैसी व्याख्या आवश्यक है। यदि 14:34-35 पौलुस का आदेश है, तो पुल्लिंग संबोधन अनुचित है। परन्तु यदि 14:34-35 कुरिन्थ की संगति के एक पुरुष-समूह का तर्क है, तो पुल्लिंग संबोधन का अर्थ बनता है। दूसरा, 14:34-35 गलातियों 3:27-28 और 1 कुरिन्थियों 11:2-16 में पौलुस के पक्ष के इतने तीव्र विरोध में है कि उन्हें आपस में मिलाने का हर प्रयास विकृतियों तक ले जाता है और अधिकतर विरोधाभास से छुटकारा पाने के लिए प्रक्षेप (बाद में जोड़े गए अंश) के सिद्धांत तक ले जाता है। परन्तु यदि 14:34-35 को कुरिन्थ का दावा और 14:36 को पौलुस का आक्रोश भरा उत्तर समझा जाए, तो एक समझ में आने वाली संगति मिलती है ..."[31]

दूसरे लेखकों ने इन कठिनाइयों के कारण 1 कुरिन्थियों 14:34-36 को या उसके कुछ भागों को सीधे-सीधे पौलुस का नहीं, बल्कि बाद में जोड़ा गया अंश माना है[32]। 1 कुरिन्थियों 11:2-16 के मामले की स्थिति के विपरीत, प्रक्षेप की धारणा का एक वास्तविक ऐतिहासिक आधार है,[33] भले ही मेरी समझ में वह प्रक्षेप-सिद्धांत के औचित्य के लिए पर्याप्त नहीं है, इसीलिए उदाहरण के लिए जेरोम मर्फ़ी-ओ'कॉनर (Jerome Murphy-O'Connor) एक अध्ययन में 1 कुरिन्थियों में सुझाए गए सब प्रक्षेपों को अस्वीकार करते हैं (अर्थात 1 कुरिन्थियों 2:6-16; 4:6; 6:14; 11:3-16; 15:31-32; 15:44-48 में), परन्तु दुःख की बात है कि 1 कुरिन्थियों 14:34-35 में उसे फिर भी मान लेते हैं।

1 कुरिन्थियों 14:34-35 में प्रक्षेप का कारण यह बताया जाता है कि नए नियम की कुछ पुरानी हस्तलिपियों में, विशेषकर 'D' (Codex Bezae [अभिप्राय Codex Claromontanus से है]) में **और सामान्य रूप से पूरी पश्चिमी हस्तलिपि-परंपरा में मौन की आज्ञा वाले पद 34-35 पद 40 के बाद रखे गए हैं**[34]। गॉर्डन डी. फ़ी (Gordon D. Fee) इस ओर संकेत करते हैं कि नए नियम में कहीं और – यूहन्ना 8 और मरकुस 16 के कहीं अधिक लंबे पाठों को छोड़कर – ऐसा कोई अंश बस कई स्थानों पर नहीं मिलता, जिसे केवल तभी समझाया जा सकता है जब पाठ पहले हाशिये पर रहा हो[35]।

परन्तु मेरी समझ में 1 कुरिन्थियों 14:34-36 के 'विरुद्ध' प्रस्तुत किए जाने वाले कई कारण बाद में जोड़े जाने के अर्थ में उसके पौलुस का न होने के पक्ष में ही बोलें, यह आवश्यक नहीं; उन्हें इस अर्थ में भी समझाया जा सकता है कि वह इसलिए 'पौलुस का नहीं' है, क्योंकि पौलुस कुरिन्थियों को उद्धृत करता है या उनका मत प्रस्तुत करता है। यह संयोग नहीं है कि जेरोम मर्फ़ी-ओ'कॉनर उद्धरण और टिप्पणी (ग्लॉस) को दो समाधानों के रूप में साथ-साथ रखते हैं, इससे पहले कि वे टिप्पणी (ग्लॉस) के पक्ष में निर्णय लें[36]।

यदि 1 कुरिन्थियों 14:34-35 को एक स्पष्ट आज्ञा के रूप में समझा भी जाए, न कि कुरिन्थियों के मत के प्रस्तुतीकरण के रूप में, तब भी "चुप रहना" पूरे अध्याय की तरह अन्य भाषाओं में बोलने और भविष्यद्वाणी से, या भविष्यद्वाणी को परखने से संबंधित होना चाहिए, परन्तु सामान्य रूप से बोलने से नहीं[37]। जब पौलुस भविष्यद्वक्ताओं से चुप रहने को कहता है (1 कुरिन्थियों 14:30), तो इसे भी कोई बोलने पर सामान्य प्रतिबंध नहीं समझता, बल्कि उसकी भविष्यद्वाणी का समाप्त करना समझता है।

टेरन विलियम्स (Terran Williams)

Wie Gott Frauen sieht: Das Ende des Patriarchats (परमेश्वर स्त्रियों को कैसे देखता है: पितृसत्ता का अंत) (पृ. 124)। अंग्रेज़ी संस्करण का Kindle संस्करण। जर्मन संस्करण "Wie Gott Frauen sieht" 2026 में पेपरबैक और Kindle ई-बुक के रूप में प्रकाशित हुआ है।

एक अस्पष्ट बाइबल-स्थान

यद्यपि कलीसिया को पवित्रशास्त्र की हमारी व्याख्याओं की निरंतर जाँच करते रहना है और अधिकाधिक स्पष्टता और दृढ़ विश्वास तक पहुँचना है, फिर भी यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि यह अंश अब भी उत्तरों से अधिक प्रश्न खड़े करता है। सबसे विश्वसनीय मत भी अनिश्चित हैं। इसलिए नम्रता की आवश्यकता है। यदि हम परमेश्वर के वचन की अवहेलना के डर से सबसे रूढ़िवादी व्याख्या चुनते हैं (मत 1), तो स्त्रियों के पूरी तरह चुप हो जाने का अर्थ यह भी होना चाहिए कि वे गा भी नहीं सकतीं, क्योंकि पौलुस (Paulus) गाने का उल्लेख बोलने के एक प्रकार के रूप में करता है। रूढ़िवाद का पक्ष लेना, परन्तु फिर स्त्रियों को केवल भविष्यद्वाणियों को परखने या प्रचार

करने से मना करना, मुझे काफ़ी मनमाना और असंगत लगता है। संगति की बात चली है तो: यदि हम रूढ़िवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं, तो हमें सचमुच संगत होना चाहिए और सब स्त्रियों से कहना चाहिए कि वे अगली कलीसियाई सभा के लिए अपना सिर ढकने का कपड़ा तैयार रखें! क्योंकि सम्मानित विद्वान इस अंश की जाँच करते हुए इतने अलग-अलग मतों पर पहुँचते हैं, इसलिए हम सब निश्चय ही इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि यह अंश अस्पष्ट है। अतः – व्याख्या की हर अच्छी पद्धति के अनुसार – इसे किसी शिक्षा-संबंधी निष्कर्ष का या संसार भर की हर कलीसिया के व्यवहार में किसी सार्वभौमिक आज्ञा का आधार नहीं बनना चाहिए।

न 1 कुरिन्थियों 11 और न 1 कुरिन्थियों 14 इस संभावना को बाहर करते हैं कि स्त्रियाँ कलीसिया और समाज में अगुवाई की भूमिका निभाएँ, अपने पतियों के साथ साझेदार के रूप में खड़ी हों या पुरुषों के सामने उपदेश दे सकें। और यह तब, जबकि इन्हीं पदों को पूरकतावादियों ने अपने पक्ष के बचाव में प्रस्तुत किया है।

सिंथिया लॉन्ग वेस्टफ़ॉल (Cynthia Long Westfall)

Paul and Gender: Reclaiming the Apostle's Vision for Men and Women in Christ (पृ. 239)। Baker Publishing Group. Kindle संस्करण।

7.3.4 पहली शताब्दी की स्त्रियाँ और उनकी बातचीत की शैली

पौलुस ने इस सिद्धांत के उल्लंघन के लिए विशेष रूप से स्त्रियों को ही ज़िम्मेदार क्यों ठहराया? उसने उन पुरुषों को भी संबोधित क्यों नहीं किया, जो, जैसा सब जानते हैं, दूसरों के बोलते समय स्वयं भी बातें करते हैं? इसका उत्तर कई दृष्टियों से लिंग के आधार पर बँटी हुई एक संस्कृति में स्त्रियों के उस विशिष्ट व्यवहार में है, जब वे केवल घर पर ही नहीं, बल्कि दूसरे संदर्भों में भी इकट्ठी होती थीं। स्मरण रखिए कि मसीही छोटी, घनिष्ठ घरेलू कलीसियाओं में मिलते थे, जो साझा भोजन के इर्द-गिर्द संगठित होती थीं और जिनमें स्त्रियाँ, अपने आत्मिक वरदानों से अलग, भोजन बनाने, भोजन परोसने और सफ़ाई करने में लगी रहती थीं। यही अपने आप में एक ऐसा वातावरण बना देता है, जिसमें स्त्रियाँ स्वाभाविक रूप से ऊँचे स्वर में बोलने और आपस में बातें करने की ओर झुकती हैं, ताकि अपना काम आसान करें और काम करते हुए आनंद लें। परन्तु इसके अलावा भी स्त्रियाँ बाधा डालने वाली हो सकती थीं, जब वे सार्वजनिक रूप से इकट्ठी होती थीं। क्रिसोस्तोम (Chrysostomus) ने स्त्रियों को संबोधित किया और ठीक इसी समस्या पर बात की:

तब स्त्रियाँ ऐसी शिक्षा के बाद चुप रहती थीं; परन्तु अब उनके बीच बड़ा शोर है, बहुत चिल्लाहट और बकबक है, और कहीं इतना नहीं जितना इस स्थान पर [गिरजाघर में]। यहाँ आप उन सबको बाज़ार या स्नानागार से भी अधिक बातें करते देखते हैं। क्योंकि मानो वे आराम करने यहाँ आती हों, वे सब निरर्थक बातों पर गपशप में लगी रहती हैं। इस प्रकार सब कुछ अस्त-व्यस्त है, और वे यह समझती नहीं लगतीं कि जब तक वे शांत न हों, वे कुछ भी उपयोगी नहीं सीख सकतीं। क्योंकि जब हमारे वचन [उपदेश] को बकबक के विरुद्ध लड़ना पड़े और कोई उस पर ध्यान न दे जो कहा जा रहा है, तो उससे उन्हें क्या लाभ हो सकता है?

केनेथ बेली (Kenneth Bailey) ऐसे ही अनुभवों का वर्णन करते हैं, जो उन्होंने मिस्र, लेबनान, यरूशलेम और साइप्रस में अपने चालीस वर्षों के निवास के दौरान पाए, सार्वजनिक आराधना में स्त्रियों के व्यवहार के संबंध में भी और छोटे समूहों में स्त्रियों को पढ़ाने के अपने व्यक्तिगत अनुभवों के संबंध में भी। वे कई कारकों का वर्णन करते हैं [...]।

7.3.5 1 कुरिन्थियों 12-14 के समापन के रूप में 1 कुरिन्थियों 14:36-40 का कार्य पौलुस अचानक एक अधिक विवादात्मक स्वर में आ जाता है, नुकीले आलंकारिक प्रश्नों के साथ, जिनके बारे में बहुत से लोग मानते हैं कि वे स्त्रियों से पूछे गए हैं और 1 कुरिन्थियों 14:34-35 के समापन का काम करते हैं। परन्तु इसमें दो बातों पर ध्यान देना है: पद 36-40 एक इकाई बनाते हैं, और यह इकाई अध्याय 14 को स्पष्ट रूप से एक सारांश के साथ समाप्त करती है, जो अन्य भाषाओं में बोलने, भविष्यद्वाणी और शालीनता तथा क्रम से काम करने से संबंधित है (पद 37, 39-40)। आत्मिक वरदानों और प्रेम का पिछला विषय अध्याय 14 की सब बहसों का संदर्भ बनाता है, इसलिए यह अंश 1 कुरिन्थियों 12-14 के समापन का काम भी करता है।

पौलुस ने अध्याय 14 में कई समूहों का कड़ाई से सामना किया है और उन्हें सुधारा है, और पद 36 में वह उन सबको पुल्लिंग बहुवचन "तुम" (ὑμῶν, ὑμᾶς) से संबोधित करता है। इसलिए पद 36 में उसके तीखे आलंकारिक प्रश्न केवल स्त्रियों से नहीं पूछे गए, बल्कि वह उन सब कुरिन्थियों से बात कर रहा है जिन्हें उसने अभी-अभी सुधारा है। वह मानकर चलता है कि अन्य भाषाओं में बोलने, भविष्यद्वाणी और सबके एक साथ न बोलने के बारे में उसने जो कुछ कहा है, उस सब पर आपत्तियाँ हो सकती हैं।

7.3.6 सारांश

आराधना के समय न बोलने का स्त्रियों को पौलुस का निर्देश (1 कुरिन्थियों 14:34-35) अक्सर उन सबके लिए एक गंभीर चुनौती माना जाता है, जो सेवा और अगुवाई में स्त्रियों के पक्ष में खड़े होते हैं। परन्तु बहुत कम विद्वान यह मत रखते हैं कि स्त्रियों के लिए चुप रहने को पूर्ण अर्थ में समझना है। प्रश्न यह है: चुप रहने के प्रकार को किस संदर्भ में समझना है, या जब पौलुस ने कहा कि स्त्रियाँ न बोलें, तो उसका क्या अर्थ था?

बल्कि घरेलू कलीसियाओं में आराधना की परिस्थिति का संदर्भ, पत्री के भीतर का संदर्भ और स्त्रियों की संस्कृति का संदर्भ पाठ का अर्थ निर्धारित करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं। ये संदर्भ संकेत करते हैं कि पौलुस स्त्रियों से अपेक्षा करता है कि वे प्रार्थना में और आत्मिक वरदानों के वैध उपयोग में भाग लें। परन्तु फिर वह उन विशेष समस्याओं को उठाता है, जो आराधना के समय अव्यवस्था और गड़बड़ी पैदा करती हैं। जैसे अन्य भाषाओं में बोलने वालों और भविष्यद्वक्ताओं को दिए निर्देशों में, वैसे ही पौलुस स्त्रियों को निर्देश देता है कि आराधना के समय वे दूसरों के साथ एक ही समय पर न बोलें, बल्कि शांत और संयमित रहें, जो वाणी की नैतिकता की सब परंपराओं में आचरण का नियम है। पौलुस पुरुषों को निर्देश देता है कि वे घर पर अपनी पत्नियों को शिक्षा दें, ताकि उन्हें आराधना के समय आपस में बातचीत करके या अपने पतियों से फुसफुसाकर अपने प्रश्नों के उत्तर पाने पर निर्भर न रहना पड़े।

फ़िलिप बी. पेन (Philip B. Payne)

17.10.2022 को Twitter पर

आज मैं कुछ अतिरिक्त हस्तलिपि-प्रमाणों के बारे में बात करना चाहता हूँ कि 1 कुरिन्थियों 14:34-35 पौलुस के बाद का एक जोड़ है, और यह समझाना चाहता हूँ कि मेरे विचार में यह पाठ में कैसे जोड़ा गया। इन पदों की एक विशेषता यह है कि वे आरंभिक हस्तलिपियों में दो अलग-अलग स्थानों पर आते हैं। 1/12

अधिकतर हस्तलिपियों में यह अंश पद 33 के बाद आता है, जैसा शायद आपकी बाइबल में भी है। परन्तु पश्चिमी कलीसियाओं की हर उपलब्ध पांडुलिपि में अंश 34-35 पद 40 के बाद आता है। दो गैर-पश्चिमी हस्तलिपियों को छोड़कर यह अंश 33 के बाद है। 2/12

यह एक महत्वपूर्ण कारण है कि गॉर्डन फ़ी (Gordon Fee), जो शायद सुसमाचारवाद (इवैन्जेलिकलिज़्म) के सबसे प्रसिद्ध पाठ-शोधकर्ता हैं, का मत है कि पद 34-35 पौलुस का न होने वाला एक जोड़ है। पश्चिमी कलीसिया 300 वर्षों तक एकमत होकर पद 34-35 को पद 40 के बाद कैसे रख सकती थी, जबकि बाकी कलीसिया उन्हें पद 33 के बाद रखती थी? 3/12

तीन संभावनाएँ:

1. वह मूल रूप से पद 33 के बाद आता था, परन्तु पद 40 के बाद खिसका दिया गया।
2. वह मूल रूप से पद 40 के बाद आता था, परन्तु पद 33 के बाद खिसका दिया गया।
3. किसी ने उसे हाशिये पर लिखा, और बाद के लिपिकों ने उसे पाठ में वहाँ जोड़ दिया जहाँ उन्हें ठीक लगा, या तो पद 33 के बाद या पद 40 के बाद। 4/12

पौलुस की किसी भी पत्री की किसी भी पांडुलिपि में ऐसा कोई मामला नहीं है, जिसमें इतना लंबा अंश बिना किसी स्पष्ट कारण के इतनी दूर के स्थान पर खिसका दिया गया हो। इससे संभावनाएँ 1 और 2 अभूतपूर्व हो जाती हैं और परिणामस्वरूप अत्यंत असंभावित। 5/12

परन्तु लिपिक कभी-कभी ऐसे शब्द मुख्य पाठ में जोड़ देते थे, जो उन्हें हाशिये पर मिलते थे। मूल का सही पुनर्निर्माण कर सकने के लिए विद्वानों को इन प्रमाणों की छानबीन करनी होती है और बहुत आरंभिक हस्तलिपियों की तुलना करनी होती है। (इसीलिए आरंभिक पांडुलिपियाँ इतनी महत्वपूर्ण हैं!) 6/12

पद 34-35 के दो अलग-अलग स्थानों पर आने की केवल एक ही व्याख्या है, जो लिपिकों की ज्ञात आदतों से मेल खाती है: पाठ के प्रतिलिपि-क्रम के एक आरंभिक चरण में किसी ने (शायद 1 तीमुथियुस 2 की शब्दावली के प्रभाव में) इस पाठ को हाशिये पर एक व्याख्यात्मक टिप्पणी के रूप में जोड़ दिया। 7/12

शायद वह यह स्पष्ट करना चाहता था कि वह पौलुस का स्पष्ट, सच्चा अर्थ क्या समझता था – ताकि पाठक बाकी पत्री के आधार पर यह न मान लें कि स्त्रियाँ कलीसिया में बोल सकती हैं। 8/12

बाद के लिपिकों ने, जिन्होंने इस पांडुलिपि की प्रतिलिपि बनाई, यह मान लिया कि ये वाक्य मूल रूप से भूल से छूट गए थे और कि पांडुलिपि को इन वाक्यों को हाशिये पर लिखकर सुधारा गया था: वही एकमात्र स्थान, जहाँ पृष्ठ पूरा हो जाने के बाद उन्हें जोड़ा जा सकता था। 9/12

एक लिपिक ने, जिसने पद 28 और 30 में चुप रहने की आज्ञाओं पर ध्यान दिया, इस टिप्पणी (ग्लॉस) को उस पहले स्थान पर जोड़ दिया, जहाँ चुप रहने की नई आज्ञा के लिए जगह थी (पद 33 के बाद)। इस पांडुलिपि की प्रतिलिपि गैर-पश्चिमी लिपिकों ने बनाई। 10/12

एक दूसरे लिपिक का मत था कि वह पद 40 के बाद, पाठ के एक तार्किक विराम पर, अधिक ठीक बैठती है। इस पांडुलिपि की प्रतिलिपि पश्चिमी लिपिकों ने बनाई। इस अंश में जोड़ने के केवल यही दो सार्थक स्थान हैं। 11/12

महत्वपूर्ण सूचना: क्योंकि यहाँ बात एक अनोखे मामले की है, जो पौलुस की पत्रियों की किसी दूसरी पांडुलिपि में नहीं मिलता, इसलिए यह बाकी पाठों की प्रामाणिकता को कमज़ोर नहीं करता। 12/12

1 कुरिन्थियों 14 में पौलुस के तर्क का विचार-क्रम और ढाँचा हमें (हस्तलिपि-प्रमाणों और दूसरे आंतरिक प्रमाणों के साथ मिलकर) संकेत देते हैं कि 1 कुरिन्थियों 14:34-35 पौलुस का नहीं है। यही पद 34 के दो असामान्य

वाक्यांशों पर भी लागू होता है: "जैसा व्यवस्था भी कहती है" और "कलीसियाओं में"। 1/13

पाठ पढ़ते समय आपको शायद यह दिखाई दे कि पद 34-35 मानो कहीं से भी नहीं आते प्रतीत होते हैं और इन पदों के बिना पाठ सहज रूप से अधिक अच्छी तरह बहता है। परन्तु पद 34-35 जो संरचनात्मक समस्याएँ लाते हैं, वे इससे भी गहरी हैं। 2/13

1 कुरिन्थियों 14:1-25 एक निरंतर तर्क है कि भविष्यद्वाणी अन्य भाषाओं में बोलने से अधिक उन्नति करने वाली है, जब तक अन्य भाषाओं का अर्थ न बताया जाए। 26-40 एक सुसंगत संरचनात्मक इकाई है, जो 1-25 पर आगे बनती है, क्योंकि यह उन्नति के लिए अन्य भाषाओं/भविष्यद्वाणी के विषय में निर्देशों की एक श्रृंखला गिनाती है। 3/13

इन निर्देशों को जोड़ने वाला सिद्धांत आराधना सभाओं में क्रम की, न कि गड़बड़ी की, आवश्यकता है। 26-40 की साहित्यिक संरचना कियास्टिक (Chiasmus वाली) है। कियास्मस एक सममित साहित्यिक रूप है। 4/13

कियास्टिक संरचना में पहला कथन अंतिम के समानांतर होता है, दूसरा कथन अंतिम से पहले वाले के समानांतर, इत्यादि। महत्वपूर्ण यह है कि ऐसे अंश का चरम बिंदु बीच में होता है। 5/13

1 कुरिन्थियों 14:26-40 में चरम बिंदु यह है: "परमेश्वर अव्यवस्था का नहीं, परन्तु शान्ति का परमेश्वर है, जैसा पवित्र लोगों की सब कलीसियाओं में है।" इस चरम बिंदु का विषय साहित्यिक संरचना के आरंभ और अंत से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। पाठ की सममिति 34-35 से टूट जाती है। 6/13

34-35 में स्त्रियों के लिए बिना शर्त मौन का आरंभ साहित्यिक संरचना के लिए असंबद्ध है, क्योंकि यह चरम बिंदु के बाद एक नया तत्व लाता है, बजाय भविष्यद्वाणी के पिछले विषय को दोहराने के, जैसा पद 37-39a करते हैं। 7/13

34-35 कोई चरम बिंदु नहीं हैं और ऐसे किसी विषय का उल्लेख नहीं करते जो अंश की भूमिका या समापन से जुड़ा हो, और अंश की कियास्टिक संरचना में उनका कोई संगत पाठ भी नहीं है। वे न केवल पौलुस के तार्किक विचार-क्रम में अनुचित स्थान पर हैं, बल्कि अन्यथा सुसंगत संरचना को भी तोड़ देते हैं। 8/13

इसके अतिरिक्त 34 का व्याकरण दो मुख्य बिंदुओं में पौलुस जैसा नहीं लगता:

- "उन्हें बोलने की अनुमति नहीं है, बल्कि उन्हें अधीन रहना है, जैसा व्यवस्था कहती है" बिलकुल पौलुस जैसा नहीं लगता। जितनी बार पौलुस "जैसा व्यवस्था कहती है" प्रयोग करता है, उसमें वह संबंधित व्यवस्था को उद्धृत करता है। 9/13
- परन्तु न केवल यह कि पौलुस यहाँ स्पष्ट रूप से पुराने नियम को उद्धृत नहीं करता, बल्कि पुराने नियम की ऐसी कोई व्यवस्था भी नहीं है, जो स्त्रियों के चुप रहने या अधीन होने की आज्ञा देती हो। यह अंश उस मौखिक यहूदी व्यवस्था की ओर संकेत कर सकता है, जो स्त्रियों के लिए मौन/अधीनता निर्धारित करती है, या उन यूनानी क़ानूनों की ओर, जो स्त्रियों के लिए सार्वजनिक सभाओं में चुप रहना निर्धारित करते थे। 10/13

परन्तु पौलुस कभी मौखिक यहूदी व्यवस्था या यूनानी-रोमी क़ानून को "व्यवस्था" नहीं कहता, और वह ऐसे निर्देशों को निश्चय ही मसीही आराधना के नियम नहीं बनाता। वह मसीही आराधना के नियम बनाने के लिए पुराने नियम की व्यवस्था का भी सहारा नहीं लेता। 11/13

2) अंत में, 1 या 2 कुरिन्थियों की किसी दूसरी आज्ञा में लोगों की किसी श्रेणी को "कलीसियाओं में" संबोधित नहीं किया गया है। यह वाक्यांश बाद के समय से अधिक मेल खाता है, जब पत्री सब कलीसियाओं में बाँटी गई, न कि केवल अपने मूल पाठकों तक। 12/13

कल मैं 1 कुरिन्थियों 14:34-35 की एक प्रचलित समानतावादी पढ़त की शक्तियों और कमज़ोरियों पर चर्चा करूँगा – अर्थात कि पौलुस किसी और को उद्धृत करता है, ताकि 36-38 में उसका खंडन करे। 13/13

क्या पौलुस 1 कुरिन्थियों 14:34-35 में किसी और को उद्धृत करता है, ताकि 14:36-38 में उसका खंडन कर सके? यह एक प्रचलित समानतावादी पढ़त है, जिसका समर्थन बहुत से ऐसे लोग करते हैं जिनका मैं आदर करता हूँ। इस व्याख्या की कई शक्तियाँ हैं, परन्तु मेरे विचार में प्रमाण इसके विरुद्ध बोलते हैं। 1/7

शक्तियाँ:

- 14:34-35 और 1 कुरिन्थियों के बाकी भाग (विशेषकर अध्याय 11 और 14 का बाकी भाग) के बीच के विरोधाभास को सुलझाती है
- समझाती है कि "व्यवस्था" का संदर्भ स्पष्ट रूप से पौलुस का क्यों नहीं लगता
- 14:36-38 का पाठ किसी झूठी भविष्यद्वाणी का खंडन करने के लिए अच्छी तरह उपयुक्त है। 2/7

कमज़ोरियाँ:

- कुरिन्थियों के दूसरे उद्धरण, जिनका पौलुस खंडन करता है, इसके आसपास भी इतने लंबे नहीं हैं
- 36-38 में ऐसा कुछ नहीं है, जिसके लिए आवश्यक हो कि वह 34-35 का खंडन करे
- यह नहीं समझाती कि हर पश्चिमी पाठ-पांडुलिपि 34-35 को 40 के बाद क्यों रखती है
- अब भी पौलुस के तर्क के प्रवाह/ढाँचे को तोड़ती है 3/7

इस व्याख्या का एक रूप कहता है कि पौलुस ने स्वयं (या कहें उसके सहायक ने) 34-35 को 36-38 के बगल में हाशिये पर लिखा, ताकि दिखाए कि उसके शब्द इस कथन का खंडन करते हैं कि स्त्रियाँ चुप रहें। बाद में प्रतिलिपिकारों का मत था कि यह मुख्य पाठ का भाग है। 4/7

इससे कुछ आपत्तियों का पर्याप्त उत्तर मिल जाता है, विशेषकर प्रवाह या ढाँचे के संबंध में और इस तथ्य के संबंध में कि ये पद हस्तलिपियों में दो स्थानों पर आते हैं। मेरे विचार में प्रमाण संकेत करते हैं कि 34-35 एक प्रक्षेप है, जिसे एक आरंभिक लिपिक ने हाशिये पर लिखा। 5/7

परन्तु उन सब व्याख्याओं में से, जो 34-35 को कुरिन्थियों के नाम पौलुस की मूल पत्री का भाग मानती हैं, सबसे विश्वसनीय यह है कि पौलुस ने कुरिन्थियों की एक झूठी भविष्यद्वाणी को हाशिये पर लिखा, ताकि दिखाए कि 36-38 उसका खंडन करते हैं। 6/7

हर हाल में ये पढ़तें इस धारणा से कहीं अधिक विश्वसनीय हैं कि पौलुस उसी पत्री में बहुत थोड़ी दूरी पर अपना ही मूल रूप से खंडन करता है, या कि हम व्याख्या की इतनी कलाबाज़ियाँ कर सकते हैं कि 1 कुरिन्थियों 11 का अर्थ भी निकाल लें और साथ ही यह भी मानें कि 14:34-35 पौलुस की आज्ञा है। 7/7

गॉर्डन डी. फ़ी (Gordon D. Fee)

c. स्त्रियों के चुप रहने के विषय में (14:34-35)

इस टीका में इन पदों की चर्चा जान-बूझकर पद 40 के बाद रखी गई है, उन कारणों से जिन्हें मैं यहाँ स्पष्ट करूँगा। अधिकतर हस्तलिपियाँ (P46 A B K Ψ 0243 33 81 1739 Maj सहित) इन पदों को यहीं रखती हैं; ये पद D F G 88* a b d f g Ambrosiaster Sedulius-Scotus में पद 40 के बाद मिलते हैं, अर्थात पूरी पश्चिमी परंपरा में (अर्थात यूनान के पश्चिम में)। यदि ये वाक्य सचमुच इस पत्री में पौलुस के ही हैं, तो हमारा सामना पूरे नए नियम की लगभग बारह सौ वर्षों की प्रतिलिपि-परंपरा में इस आकार के एकमात्र स्थानांतरण से है; इस पूरे हस्तांतरण-इतिहास में कहीं और इसके आसपास का भी कुछ नहीं मिलता, न यूनानी में, न दूसरे संस्करणों में। वास्तव में पूरे नए नियम में इस प्रकार का एकमात्र दूसरा "स्थानांतरण" कुछ प्रारंभिक हस्तलिपियों में मत्ती 5:4-5 के पहले दो धन्य-वचनों का उलट जाना है। यह तथ्य अपने आप में नए नियम के हर विद्वान को पाठ की प्रामाणिकता पर गंभीर संदेह करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, और तब तो और भी, जब इसमें इस खंड में आने वाली स्पष्ट रूप से अ-पौलुसीय भाषा-शैली को भी जोड़ दिया जाए। नीचे की चर्चा के अतिरिक्त विशेष रूप से इस विषय पर P. B. Payne, Man and Woman, One in Christ: An Exegetical and Theological Study of Paul's Letters (Grand Rapids, 2009), 217-67 का गहन और संतुलित विवेचन देखें, जो, जैसा ई. जे. एप (E. J. Epp) ने टिप्पणी की है, "बारीकी से शब्दबद्ध, विश्वसनीय रूप से तर्कपूर्ण और स्थायी महत्व का है"। जो लोग दूसरा मत रखते हैं, उन्हें अब उसी स्तर पर उत्तर देना होगा और अपनी अक्सर रक्षात्मक और तिरस्कारपूर्ण मनोवृत्ति छोड़नी होगी।

इस प्रकार पाठ की व्याख्या स्वयं, पाठ-संबंधी प्रश्नों के साथ मेल खाते हुए, इस निष्कर्ष पर ले जाती है कि यह प्रामाणिक नहीं है, विशेषकर इसलिए कि इसका इतना बड़ा भाग उस बात के विरुद्ध है जिसके पक्ष में पौलुस ने बड़े संदर्भ में तर्क दिया है! यदि ऐसा है, तो यह बाद के मसीहियों के लिए निश्चय ही बाध्यकारी नहीं है। यदि नहीं, तो इसकी प्रामाणिकता पर बड़े संदेह को एक चेतावनी का काम करना चाहिए कि इसे किसी ऐसी संस्कृति में एक शाश्वत प्रतिबंध के रूप में प्रयोग न किया जाए, जिसमें सभा में स्त्रियों का ऐसा बोलना कोई लज्जा की बात न हो – और तब तो और भी, जब "हर वह स्त्री जो प्रार्थना करती या भविष्यद्वाणी करती है" (11:5) के बारे में पहले के तथ्यपरक कथन के प्रकाश में देखा जाए – जिसका अर्थ केवल "ऊँचे स्वर में" और परमेश्वर के इकट्ठे हुए लोगों के संदर्भ में ही हो सकता है।

जो बात व्याख्या-शास्त्र की दृष्टि से संदिग्ध लगती है, और फिर भी इतने सारे साहित्य का अनकहा अंतर्पाठ है, वह यह है कि भविष्यद्वाणी और अन्य भाषाओं में बोलने के बारे में आसपास के पूरे खंड को, प्राथमिक व्याख्या-शास्त्रीय कारणों से, समकालीन (सामान्यतः पश्चिमी) कलीसिया पर लागू होने योग्य मानने से अप्रत्यक्ष रूप से इनकार कर दिया जाता है, जबकि यह एकमात्र और संभवतः अप्रामाणिक अंश सब समयों और सब परिस्थितियों के लिए एक वचन के रूप में चुन लिया जाता है। "शिष्ट" पश्चिमी संस्कृति में अधिकतर कलीसियाओं में अनायास ऊँचे स्वर में प्रार्थना करना या भविष्यद्वाणी करना वास्तव में पूरी तरह वर्जित है। हम सब, पतित मनुष्य जैसे हम हैं, आसानी से ऐसी बातें करने की ओर झुक जाते हैं। [38]

फ़िलिप जे. एबट (Philip J. Abbott)

फ़िलिप जे. एबट का मास्टर शोध-प्रबंध (Master of Arts), Pepperdine University, मई 2015

पूरा यहाँ: Bringing Order to 1 Cor 14:34-35 | Philip Abbott - Academia.edu

1 कुरिन्थियों 14:34-35 में क्रम लाना

निष्कर्ष

यद्यपि बहुत से लोग दावा करते हैं कि 1 कुरिन्थियों 14:34-35 कुरिन्थियों के नाम पौलुस की पत्रियों के पाठ में एक अ-पौलुसीय प्रक्षेप (बाद में जोड़ा गया अंश) है, फिर भी यह सिद्धांत असंभावित है; ये पद कोई ऐसी पुरुष-वर्चस्ववादी मनोवृत्ति नहीं दिखाते जो पौलुस के लिए पराई हो, जैसा कुछ विद्वान दावा करते हैं। इसके विपरीत, इन पदों में पौलुस कुरिन्थुस की स्त्रियों से कहता है कि वे क्रम के उस सिद्धांत के अधीन रहें जो तोरा की नींव में है। इस तर्क को पौलुस के इस निर्देश से समर्थन मिलता है कि स्त्रियाँ कलीसिया के सामने अपने पतियों पर दोष न लगाएँ; ऐसा व्यवहार उस सुव्यवस्थित वातावरण को खोखला कर देता है जो आराधना में होना चाहिए।

फिर भी यह खंड सदियों तक गलत समझा गया, क्योंकि यह उस विशेष परिस्थिति के ज्ञान को मानकर चलता है जिसे पौलुस संबोधित कर रहा था। इन पदों में पौलुस संसार भर की, कालातीत कलीसियाई प्रथा के लिए निर्देश नहीं दे रहा था, बल्कि एक विशेष समस्या को सुलझाने का प्रयास कर रहा था, जो कुरिन्थुस में मसीहियों के एक छोटे समूह की सुव्यवस्थित आराधना में बाधा डाल रही थी। परन्तु यह खेद की बात है कि बहुत से लोग वह नहीं समझते जो बेन विदरिंगटन (Ben Witherington) ने देखा है: "कोई व्यक्ति किसी भूल को सुधारने के लिए जो कहता है, उसे किसी विषय पर उसके दृष्टिकोण का पूर्ण या अंतिम वक्तव्य नहीं माना जा सकता"।

इसके बावजूद कि कुछ लोग इन पदों में स्पष्ट स्त्री-द्वेष देखते हैं, यह ध्यान देने योग्य है कि प्रेरितिक पिताओं (रोम के क्लेमेंट [Clemens von Rom] जैसे पुरुष-वर्चस्ववादियों ने भी) इस अंश को स्त्रियों को चुप कराने के लिए उद्धृत नहीं किया (या इसे उद्धृत ही नहीं किया)। इस तथ्य ने कुछ लोगों को गलती से यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित किया कि यह अंश बाद में पाठ में डाला गया था; उनका तर्क है कि प्रारंभिक मसीहियों द्वारा इन पदों का उल्लेख न किया जाना इस बात का प्रमाण है कि ये पद बाद में जोड़े गए। परन्तु सिकंदरिया का क्लेमेंट (Clemens von Alexandrien) इस अंश को जानता था और इसे दोनों लिंगों के लिए आराधना में क्रम के निर्देश के रूप में समझता था। प्रेरितिक पिता भी संभवतः ऐसा ही सोचते थे। इसके अतिरिक्त यह अत्यंत असंभावित है कि कोई प्रक्षेप, जो प्रेरितिक पिताओं के समय के बाद ही पाठ में आया हो, 1 कुरिन्थियों की हर उपलब्ध हस्तलिपि में दिखाई दे।

कलीसिया में स्त्रियों को चुप कराने के लिए 1 कुरिन्थियों 14:34-35 का सहारा लेने का सबसे पहला ज्ञात उदाहरण लातीनी कलीसियाई पिता तर्तुलियन (Tertullian) (ईसवी 160-220) का है। यह ध्यान देने योग्य है कि वह और बाद के पश्चिमी कलीसियाई पिता, जो स्त्रियों को चुप कराने के लिए इस अंश को उद्धृत करते हैं, उस पश्चिमी पाठ-प्रकार का प्रयोग करते हैं, जिसमें यह अंश स्थानांतरित किया गया था। यह शायद ही कोई संयोग है।

पाठ का स्थानांतरण संभवतः दूसरी शताब्दी में हुआ, जब हस्तलिपियों के साथ बेलगाम छेड़छाड़ की जाती थी और कलीसिया रोमी संसार में अपने पाँव जमाने का प्रयास कर रही थी। पश्चिमी मसीहियों ने मसीही ekklesia को यूनानी-रोमी ekklesia के अनुरूप बनाने का प्रयास किया; वे चाहते थे कि कलीसिया अपनी प्रथाओं और अपने सामाजिक स्वरूप में राज्य का अनुकरण करे। इसके अतिरिक्त मसीही गैलेन (Galen) जैसे रोमी दार्शनिकों के पाठों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण से प्रभावित हुए। इसने बहुत से लोगों को अपने कलीसियाई एजेंडे के समर्थन में पाठों की व्याख्या करने और उन्हें बदलने के लिए प्रेरित किया; उन्होंने पाठों की शिक्षाओं के अनुसार स्वयं को ढालने के बजाय लेखों को इस प्रकार बदलने का प्रयास किया कि वे उनकी धारणाओं से मेल खाएँ।

1 कुरिन्थियों 14:34-35 का स्थानांतरण संभवतः ईसवी दूसरी शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ, जब पश्चिमी मसीही रोम के बिशप एलुथेरस (Eleutherus) (जो एक पूर्वी मसीही था) को मोंटानुसवाद (Montanismus) की निंदा करने के लिए मनाने का प्रयास कर रहे थे।

पहले एलुथेरस ने मोंटानुसवादी आंदोलन को सहन किया और इस पंथ के लिए अपने आशीर्वाद के साथ एक पत्री प्रकाशित की। परन्तु मोंटानुसवादियों के अधिकार के अपरंपरागत दावों और उनके अनुचित व्यवहार के कारण अंत में पश्चिम के मसीहियों ने बिशप को मना लिया कि वह अपना आशीर्वाद वापस ले और इस पंथ की निंदा करे। संभावना है कि मोंटानुसवादी आंदोलन के बारे में इस विवाद के बीच पश्चिमी पाठ के लेखकों ने पश्चिमी पाठ को बदला, ताकि स्त्रियों की भविष्यद्वाणी की निंदा के लिए प्रेरितिक समर्थन प्राप्त कर सकें, जो मोंटानुसवाद में उसकी प्रसिद्ध भविष्यद्वक्तिनों के कारण बड़ी भूमिका निभाती थी। अपना लक्ष्य पाने के लिए पश्चिमी प्रतिलिपिकारों ने संभवतः 1 कुरिन्थियों 14:34-35 को पाठ में कुछ पद आगे खिसका दिया, ताकि उन्हें सुव्यवस्थित आराधना के संदर्भ से हटा दें। पदों के इस सूक्ष्म स्थानांतरण ने पाठकों के लिए इस अंश को इस सार्वभौमिक आदेश के रूप में स्वीकार करना अधिक संभव बना दिया कि स्त्रियों को कलीसिया में चुप रहना है।

यहाँ एक स्पष्टीकरण आवश्यक है: ऐसा नहीं है कि इस अंश को स्त्री-विरोधी अर्थ में समझे जाने के लिए स्थानांतरित किया जाना आवश्यक है। परन्तु स्थानांतरण पाठ को सुव्यवस्थित आराधना के संदर्भ से बाहर ले आता है और पाठ के प्रतीत होने वाले स्त्री-विरोधी स्वर को रेखांकित करता है। स्थानांतरित अंश के संभावित स्त्री-विरोधी संदेश ने मोंटानुसवाद के विरुद्ध संघर्ष में पश्चिमी मसीहियों की सहायता की होगी।

मोंटानुसवादी विवाद और दूसरी शताब्दी के रोम में पाठ-हस्तांतरण का "बहुत हद तक भ्रष्ट आधार" पश्चिमी पाठ की पृष्ठभूमि बनाते हैं। यह अत्यंत परिवर्तनशील पाठ-रूप अपने भावानुवादों, मूल पाठ-रूपों से अनेक विचलनों और अपने पाठ-संबंधी पुनर्गठनों के लिए जाना जाता है। पश्चिमी पाठ में स्त्री-विरोधी परिवर्तन विशेष रूप से ध्यान खींचते हैं, जो एक स्पष्ट स्त्री-विरोधी एजेंडे को प्रकट करते हैं। यह स्पष्ट है कि पश्चिमी पाठ के रचयिता कलीसिया के अपने पुरुष-वर्चस्ववादी दर्शन को बढ़ावा देने के लिए नए नियम के साथ छेड़छाड़ करना चाहते थे। दुर्भाग्य से इसमें वे बहुत हद तक सफल भी हुए, यहाँ तक कि ओरिजेन (Origenes) जैसे लोगों के साथ भी, जिसने उनके बहुत से पाठ-रूपों को अस्वीकार किया, परन्तु उनकी स्त्री-विरोधी वाक्पटुता से स्वयं को कायल हो जाने दिया।

सारांश में कहा जा सकता है कि मोंटानुसवादी विवाद और अपने स्त्री-विरोधी पाठ-रूपों के साथ पश्चिमी पाठ का विकास, दोनों दूसरी शताब्दी में हुए; इन समकालीन कारकों ने अवश्य एक दूसरे को प्रभावित किया होगा। यह बहुत संभव लगता है कि पश्चिमी पाठों के स्त्री-विरोधी पाठ-रूप एक ऐसे आंदोलन (मोंटानुसवाद) की प्रतिक्रिया थे, जो पश्चिम की मसीही विचारधारा के लिए खतरा था। अपने पक्ष की रक्षा के लिए इन पश्चिमी मसीहियों ने, विशेषकर मोंटानुसवादियों के भिन्न अधिकार-दावों को देखते हुए, यह सुनिश्चित करना बहुत लाभदायक पाया कि निर्णायक प्रेरितिक पाठ उनके दर्शनों का समर्थन करें। दुर्भाग्य से 1 कुरिन्थियों 14:34-35 में पौलुस की क्रम के लिए की गई अनुत्तेजक अपील और मसीही स्त्रियाँ, दोनों उनके संपादकीय षड्यंत्रों की शिकार बन गईं; जैसे ही यह अंश स्थानांतरित हुआ, यह मसीही स्त्रियों और उनके आत्मिक वरदानों के लिए एक बाधा और मौन की आज्ञा बन गया।

क्रम लाने का एक प्रयास

1 कुरिन्थियों 14:34-35 के बारे में आश्चर्यजनक मात्रा में साहित्य लिखा गया है। विशेषकर इसलिए कि इस खंड में लिंग-संबंधी प्रश्नों की बात है, बहुत से लोग इसके संदेश में और इसके आसपास की पाठ-स्थिति में बड़ी रुचि रखते

हैं। आज की मसीहियत में स्त्री की भूमिका का प्रश्न बहुत से लोगों के लिए दाँव पर है, जो कुरिन्थियों के नाम पौलुस की पत्री में इस निर्देश के संभावित स्त्री-विरोधी स्वरूप को समझने का प्रयास करते हैं।

1 कुरिन्थियों 14:34-35 पर विचार करने वाले साहित्य की मात्रा और विविधता के बावजूद यह आश्चर्य की बात है कि उन हस्तलिपियों पर कितना कम ध्यान दिया गया है जिनमें यह स्थानांतरण है। व्याख्याकार शायद ही कभी उन पाठों के स्वरूप या उद्गम की जाँच करते हैं जिनमें 1 कुरिन्थियों 14:34-35 स्थानांतरित है। इसके बजाय बहुत से लोग बस इतना उल्लेख कर देते हैं कि कुछ हस्तलिपियों में यह खंड स्थानांतरित है और दावा करते हैं कि 14:34-35 संभवतः एक प्रक्षेप है।

इस शोध-प्रबंध का शीर्षक है "1 कुरिन्थियों 14:34-35 में क्रम लाना"। इसका लक्ष्य उस सामाजिक परिवेश को, जिसके कारण 1 कुरिन्थियों 14:34-35 लिखा गया, उसके साहित्यिक संदर्भ को, पश्चिमी पाठों में उसके स्थानांतरण को और स्त्रियों के लिए मौन की आज्ञा के रूप में उसके बाद के प्रयोग को प्रकाश में लाना है। 1 कुरिन्थियों 14:34-35 पर शोध की वर्तमान अव्यवस्थित स्थिति बहुत हद तक इन कारकों की उपेक्षा के कारण है।

जहाँ यह अध्ययन 1 कुरिन्थियों 14:34-35 के संदेश और इतिहास को उजागर करने का प्रयास करता रहा है, वहीं इसने कुछ नए विषय और प्रश्न भी उठाए हैं, जो शोध के नए मार्ग खोल सकते हैं। पहला: स्त्रियों के दमन के अतिरिक्त और कौन सी कलीसियाई प्रथाएँ छेड़छाड़ किए गए पाठों से प्रभावित हुईं? 1 कुरिन्थियों 14:34-35 का स्थानांतरण निश्चय ही एकमात्र संपादकीय हस्तक्षेप नहीं है जिसके द्वारा किसी विशेष कलीसियाई प्रथा को उचित ठहराने का प्रयास किया गया। पाठ-आलोचना सामान्यतः नए नियम के मूल पाठों को प्रकाशित करने का काम करती है। परन्तु वह उन सामाजिक लक्ष्यों के बारे में क्या बता सकती है जिन्होंने आधुनिक मसीहियत को ढाला है? दूसरा: यह अध्ययन उस पहले से फैले हुए आंदोलन से जुड़ता है जो प्राचीन मसीहियत में स्त्रियों की चुप करा दी गई आवाज़ों को खोजने का प्रयास करता है। ये प्रारंभिक विश्वासी कौन थे और उन्हें क्या कहना था? तीसरा: यह अध्ययन पाठक को अपनी व्याख्या-शास्त्रीय प्रथा की जाँच करने के लिए प्रेरित करना चाहता है। मोंटानुसवाद के विरुद्ध संघर्ष में पश्चिमी पिताओं की तरह, हम भी किस हद तक पवित्रशास्त्र को विकृत करते हैं? यद्यपि हमारे आधुनिक संसार में पवित्र पाठों के साथ भौतिक छेड़छाड़ असंभावित है, फिर भी लगभग हर मसीही किसी न किसी मात्रा में पवित्रशास्त्र को संदर्भ से अलग करके अपने व्यक्तिगत लक्ष्यों को वैध ठहराने के लिए उसका प्रयोग करने का दोषी है। अंततः नए नियम के पाठक होने के नाते हमें व्यक्तिगत एजेंडे की आँखों की पट्टियाँ उतारकर और पवित्रशास्त्र को स्वयं बोलने देकर अपनी व्याख्याओं का मूल्यांकन करना होगा।

डॉन कार्सन (Don Carson)

इस लिंक से पूरा पाठ डाउनलोड किया जा सकता है, यहाँ केवल अंश उद्धृत किए गए हैं:

6. "Silent in the Churches": On the Role of Women in 1 Corinthians 14:33b-36 | Bible.org

1 कुरिन्थियों 14:33b-36 की व्याख्या किसी भी प्रकार सरल नहीं है। कठिनाई का केंद्र यह है कि 1 कुरिन्थियों 11:2-16 में पौलुस स्त्रियों को प्रार्थना करने और भविष्यद्वाणी करने देने के लिए पूरी तरह तैयार है, भले ही कुछ सीमाओं के साथ; परन्तु यहाँ पाठ को पहली बार पढ़ने पर ऐसा लगता है कि उसके द्वारा आदेशित मौन पूर्ण है। जो समाधान प्रस्तुत किए जाते हैं, वे, दुष्टात्मा-ग्रस्तता के कुछ मामलों में दुष्टात्माओं की तरह, सेना भर हैं। मैं इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता कि उनमें से कुछ की सूची दूँ और अपनी एक-दो आपत्तियाँ बताऊँ, इससे पहले कि मैं उस व्याख्या की ओर मुड़ूँ जिसे मैं संदर्भ और पाठ की व्याख्या की दृष्टि से सबसे सुरक्षित पाता हूँ।

HJR: इसके बाद आने वाले पाठ में कार्सन पाठ-आलोचना से जुड़े और दूसरे प्रश्नों पर विचार करता है, जिन्हें लंबाई के कारण मैं यहाँ प्रस्तुत नहीं कर रहा। मैं केवल अंत में दिया गया उसका स्पष्टीकरण उद्धृत करता हूँ।

IV. संदर्भ द्वारा निर्धारित एक (कार्सन की) व्याख्या

एक दूसरी व्याख्या अनेक लेखकों द्वारा प्रस्तुत की गई है और यह उन आपत्तियों का उत्तर देती है जो इसके विरुद्ध उठाई जाती हैं। अन्यत्र इसका विस्तार से बचाव किया गया है; यहाँ मैं केवल इसकी रूपरेखा दे सकता हूँ। पौलुस ने अभी-अभी कुरिन्थुस की कलीसिया से कहा है कि वह अपने सामने रखी गई भविष्यद्वाणियों को सावधानी से परखे। स्त्रियाँ निस्संदेह ऐसी भविष्यद्वाणियों में भाग ले सकती हैं; यह अध्याय 11 में स्थापित हो चुका है। परन्तु पौलुस यहाँ जो कहना चाहता है, वह यह है कि वे ऐसी भविष्यद्वाणियों के मौखिक मूल्यांकन में भाग नहीं ले सकतीं। किसी भी कलीसिया में इसकी अनुमति नहीं है। इस संदर्भ में उन्हें बोलने की अनुमति नहीं है – "जैसा व्यवस्था कहती है"। स्पष्ट रूप से उस मत के अनुरूप, जो "व्यवस्था" की इस अपील को कुरिन्थियों के पक्ष की एक विशेषता बना देता है, इवांस (Evans) का मानना है कि इसे पौलुस की अपनी व्यवस्था की अपील समझना पौलुस के लिए "विचित्र रूप से असामान्य" लगता है। यह एक काफ़ी विचित्र आकलन है, क्योंकि पौलुस इस अध्याय में पहले भी एक बार "व्यवस्था" की अपील कर चुका है (तुलना करें 14:21), जिससे उसका अभिप्राय पुराने नियम के लेखों से है। इस वाक्य से पौलुस संभवतः उत्पत्ति 3:16 की ओर संकेत नहीं करता, जैसा बहुत से लोग मानते हैं, बल्कि उत्पत्ति 2:20b-24 में सृष्टि की व्यवस्था की ओर, क्योंकि स्त्री की भूमिका पर चर्चा करते समय पौलुस दो दूसरे अवसरों पर स्पष्ट रूप से इन्हीं पदों का उल्लेख करता है (1 कुरिन्थियों 11:8-9; 1 तीमुथियुस 2:13)। उत्पत्ति 2 का यह खंड निस्संदेह चुप रहने की आज्ञा नहीं देता, परन्तु वह इस ओर संकेत करता है कि चूँकि पुरुष पहले बनाया गया और स्त्री पुरुष के लिए बनाई गई, इसलिए उन भूमिकाओं के लिए एक प्रकार का नमूना निर्धारित किया गया जो दोनों निभाते हैं। सृष्टि की इस व्यवस्था से पौलुस यह निकालता है कि स्त्री पुरुष के अधीन रहे – या कम से कम यह कि पत्नी अपने पति के अधीन रहे। कुरिन्थुस में भविष्यद्वाणियों के मूल्यांकन के संदर्भ में ऐसी अधीनता बनी नहीं रह सकती थी, यदि पत्नियाँ उसमें भाग लेतीं: भविष्यद्वाणी बोलने वाला पहला पति ही समस्या खड़ी कर देता।

व्यापक अर्थ में यह मत रखा जा सकता है कि पौलुस इसे अस्वीकार करता था कि कोई स्त्री पुरुषों पर कलीसिया द्वारा मान्य शिक्षा का पद चलाए (1 तीमुथियुस 2:11 आदि), और भविष्यद्वाणियों को सावधानी से परखना इसी शिक्षा देने वाले कार्य के अंतर्गत आता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्रियाँ सीखें नहीं: घर लौटने पर वे इन भविष्यद्वाणियों के विभिन्न पहलुओं के बारे में अपने पतियों से पूछें। कुरिन्थियों को केवल सब कलीसियाओं की प्रथा (पद 33b) की ही नहीं, बल्कि स्वयं पवित्रशास्त्र (पद 34) की भी अवहेलना क्यों करनी चाहिए? क्या वे अपने पाए हुए प्रकाशनों से इतने उत्साहित हैं कि उन्हें पवित्रशास्त्र और प्रेरितिक परंपरा में प्रामाणिक रूप से सौंपी गई बातों के विरुद्ध खड़ा करने का साहस करते हैं? और यदि वे समझते हैं कि वे आत्मा की प्रेरणाओं के अंतर्गत इस परंपरा की केवल व्याख्या कर रहे हैं, तो क्या वे यह देखकर व्याकुल नहीं होते कि सब कलीसियाओं ने उन्हीं पाठों और उसी सुसमाचार को उनसे बिलकुल भिन्न कलीसियाई प्रथा में ढाला है? क्या केवल तुम्हीं तक परमेश्वर का वचन पहुँचा है (तुलना करें पद 36b)?

इस व्याख्या पर कुछ अंतिम टिप्पणियाँ सहायक सिद्ध हो सकती हैं। पहली: यह व्याख्या अध्याय 14 के प्रवाह के अनुकूल है। यद्यपि अध्याय के दूसरे भाग में ज़ोर अब भी अन्य भाषाओं में बोलने और भविष्यद्वाणी पर है, फिर भी वह उस क्रम से और भी निकटता से जुड़ा है जिसे कलीसिया को इन अनुग्रह-वरदानों के प्रयोग में बनाए रखना है। पद 33b-36 इस वर्णन में भली-भाँति बैठते हैं। ठीक पहले के पद भविष्यद्वक्ताओं के मूल्यांकन से संबंधित हैं; ये

पद (पद 33b-36) इस चर्चा को और परिष्कृत करते हैं। 1 कुरिन्थियों 12-14 का सामान्य विषय छोड़ा नहीं गया है, जैसा अध्याय 14 के अंतिम पद दिखाते हैं। इन विवादित पदों की कोई दूसरी व्याख्या नहीं है जो तर्क के प्रवाह में इतनी अच्छी तरह बैठती हो।

दूसरी: यह व्याख्या न केवल पाठ के प्रवाह की दृष्टि से, बल्कि पाठ की संरचना की दृष्टि से भी अर्थपूर्ण है। अध्याय 14 पर अन्य भाषाओं में बोलने और भविष्यद्वाणी के महत्व की चर्चा छाई हुई है। अध्याय का अधिकतर भाग यहाँ हमारे विषय से संबंधित नहीं है। परन्तु पद 26 और आगे के पद स्पष्ट रूप से सभा में इन दोनों वरदानों की व्यवस्था के लिए व्यावहारिक दिशानिर्देशों से संबंधित हैं। पद 26 काफ़ी सामान्य है। पद 27-28 अन्य भाषाओं में बोलने वालों के लिए व्यावहारिक सीमाओं से संबंधित हैं। पद 29 में पौलुस भविष्यद्वाणी की ओर मुड़ता है और लिखता है: "दो या तीन भविष्यद्वक्ता बोलें, और दूसरे सावधानी से परखें कि क्या कहा गया है।" फिर इस पद के दोनों भागों पर अलग-अलग विचार किया जाता है: पहले भाग ("दो या तीन भविष्यद्वक्ता बोलें") पर पद 30-33a में विचार होता है, जहाँ भविष्यद्वाणियाँ बोलने की सीमाओं की बात है; दूसरे भाग ("और दूसरे सावधानी से परखें कि क्या कहा गया है") पर पद 33b-36 में विचार होता है, जहाँ भविष्यद्वाणियों के मूल्यांकन की सीमाओं की बात है।

तीसरी: इसके विरुद्ध उठाई गई मुख्य आपत्ति यह है कि यह असंगत लगता है कि पौलुस स्त्रियों को भविष्यद्वाणी करने की अनुमति दे और फिर उन्हें भविष्यद्वाणियों का मूल्यांकन करने से मना करे। परन्तु इस आपत्ति में बहुत कम वज़न है, यदि यह ध्यान में रखा जाए कि ऐसी भविष्यद्वाणी का अधिकार-स्तर वह नहीं है जो पुराने नियम के बड़े लेखक-भविष्यद्वक्ताओं का था (चाहे यह अधिकार तुरंत पहचाना गया हो या नहीं)। अन्यत्र मैंने विस्तार से दिखाया है कि नए नियम में "भविष्यद्वाणी" एक असाधारण रूप से व्यापक श्रेणी है, जो अन्यजाति भविष्यद्वक्ताओं के कार्य (तीतुस 1:12) से लेकर पुराने नियम की धर्मशास्त्रीय (कैनोनिकल) भविष्यद्वाणी तक फैली है। सामान्य कलीसियाई जीवन में इसे आत्मा द्वारा प्रेरित कथन के रूप में माना जाता था, जो फिर भी हर विवरण में ईश्वरीय अधिकार की गारंटी नहीं देता था, और इसलिए न केवल उसके मूल्यांकन की आवश्यकता थी (1 कुरिन्थियों 14:29), बल्कि उसका अधिकार भी आवश्यक रूप से प्रेरित पौलुस द्वारा प्रस्तुत सत्य-निधि से कम था (14:37-38)। इसलिए एक अर्थ में यह पूरी तरह उचित है कि पौलुस शिक्षा को भविष्यद्वाणी से ऊपर रखता है, विशेषकर जब शिक्षा को उस अपरक्राम्य प्रेरितिक निधि का भाग माना जाए, जो आंशिक रूप से उन कसौटियों में से एक का काम करती है जिनके द्वारा कलीसिया उसे दी गई भविष्यद्वाणियों को परख सकती है, और विशेषकर जब स्वयं भविष्यद्वाणियाँ, प्रेरितिक निधि से भिन्न, कलीसियाई मूल्यांकन के अधीन हों। निस्संदेह इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी विशेष शिक्षक के कथनों की जाँच आवश्यक नहीं; मैं यह नहीं कह रहा कि भविष्यद्वाणी को परखा जाना चाहिए परन्तु शिक्षा को नहीं। नए नियम में बहुत से ऐसे स्थान हैं जो कलीसिया को शिक्षकों और शिक्षा के मूल्यांकन की ज़िम्मेदारी उठाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं (1 तीमुथियुस 1:3; 6:3-5; तीतुस 1:9-14; इब्रानियों 13:9; 2 पतरस 2:1 आदि)। परन्तु इसका अर्थ यह है कि भविष्यद्वाणी ऐसे मूल्यांकन से बच नहीं सकती, और यह मानकर चलता है कि प्रेरितिक शिक्षा का एक भंडार है, एक निश्चित विषय-वस्तु, जो अपरक्राम्य है और जो आगे की शिक्षा और भविष्यद्वाणी दोनों के लिए कसौटी का काम कर सकती है।

चौथी: बाइबल मसीह में पुरुषों और स्त्रियों के संबंधों के बारे में जो कुछ कहती है, यह उसका सब कुछ नहीं है। उदाहरण के लिए, मैंने पुरुषों को दी गई उस आज्ञा के बारे में कुछ नहीं कहा कि वे अपनी पत्नियों से वैसा ही प्रेम करें जैसा मसीह ने कलीसिया से प्रेम किया – एक असाधारण रूप से ऊँचा मानदंड, जिसकी पहचान असीम आत्म-समर्पण है। न ही मैंने उन बहुत सी बातों की सूची दी जिनकी पौलुस मसीही स्त्रियों से अपेक्षा करता है। सबसे बढ़कर, मैंने इस तथ्य को कोई स्थान नहीं दिया कि किसी यूनानी ekklesia में, अर्थात एक सार्वजनिक सभा

में, स्त्रियों को बोलने की बिलकुल अनुमति नहीं थी। इसके विपरीत, मसीही ekklesia में आत्मा द्वारा संभाली गई स्त्रियों को इसके लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इस अर्थ में पौलुस कुरिन्थुस के सामाजिक रीति-रिवाजों में बंदी नहीं था: उसकी अपनी राय में सुसमाचार ने स्त्रियों को सचमुच कुछ सांस्कृतिक बंधनों से मुक्त किया है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इससे भूमिकाओं के सब अंतर मिट गए हैं। मैं नए नियम के व्यापक आधार पर यह तर्क देने के लिए तैयार हूँ कि जो भिन्न भूमिकाएँ बनी रहती हैं, वे पौलुस के लिए इस सृजित व्यवस्था में जीवन का भाग हैं, "अभी से" और "अभी नहीं" के बीच के तनाव में – युगांत-संबंधी आत्मा के दान और सब बातों की पूर्णता के बीच के समय में, जब न कोई विवाह करेगा और न विवाह में दिया जाएगा।

और पाँचवीं: यदि यह व्याख्या सही है और पुरुषों और स्त्रियों के बीच भूमिकाओं के कुछ अंतर हैं जिनका ध्यान रखना है, तो यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि यह शिक्षा हमारी भलाई के लिए है, हमें दास बनाने के लिए नहीं। यह एक ऐसा विषय है जिस पर मैं विस्तार से बात करना चाहूँगा, परन्तु यहाँ मैं इसे आगे नहीं बढ़ाऊँगा।

Copyright 1997 Council on Biblical Manhood and Womanhood (CBMW). सर्वाधिकार सुरक्षित।

HJR की टिप्पणी: जब मैंने 10 वर्ष से भी अधिक पहले कार्सन की पुस्तकें खोजीं, तो वह किसी ख़ज़ाने के मिलने जैसा था। परमेश्वर के वचन के प्रति निष्ठा के साथ जुड़ी उसकी विचारों की तीक्ष्णता और उसकी विचारों की गहराई मुझे आज भी प्रभावित करती है। मैं उसकी तुलना विलियम केली (William Kelly) से करना पसंद करता हूँ, जिसका उल्लेख मैंने आरंभ में किया था। वास्तव में, कारण जो भी हो, उसमें केली की कमज़ोरियाँ भी हैं।

कार्सन (Carson) अपने संदर्भ में इन दोनों पदों की व्याख्या करते हुए किसी ऐसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को, जिसकी ओर पौलुस संकेत कर सकता हो, पूरी तरह छोड़ देने में सफल होता है। वह वास्तव में एक सुसंगत व्याख्या देता है, जो फिर भी चुप रहने को पूर्ण नहीं ठहराती, बल्कि (जैसे उदाहरण के लिए विदरिंगटन [Witherington]) उसे भविष्यद्वाणियों के मूल्यांकन तक सीमित करती है। मुख्य तर्क सृष्टि की व्यवस्था है। उसके अनुसार व्यवस्था इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि पुरुष पहले बनाया गया और स्त्री उसकी सहायता के लिए बनाई गई। इससे एक संरचनात्मक, पदानुक्रमित व्यवस्था और भूमिकाओं का बँटवारा बना, जिसमें स्त्री पुरुष के अधीन है। यही कारण है कि वह पुरुष को शिक्षा न दे। किसी भविष्यद्वाणी का मूल्यांकन ज्ञात प्रेरितिक शिक्षा के आधार पर और उसके द्वारा होता है। (यहाँ एक प्रश्न उठता है: कार्सन स्वीकार करता है कि स्त्री भविष्यद्वाणी कर सकती है। तो क्या वह अपनी ही भविष्यद्वाणी का मूल्यांकन कर सकती है? इस स्थिति में वह किसी पुरुष को नहीं, बल्कि एक स्त्री को "शिक्षा" दे रही होती।)

यद्यपि यह व्याख्या बहुत तर्कसंगत लगती है, फिर भी मैं निम्नलिखित बातों पर विचार करने को कहता हूँ, या कहें कि मेरी निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं:

पद 34 को पूर्ण मौन की आज्ञा के रूप में समझा जा सकता है, भले ही यह 1 कुरिन्थियों 11:5 और पूरे अध्याय 14 के विरुद्ध हो और इस प्रकार कोई अर्थ न बनता हो।

कार्सन की व्याख्या एक पूर्व-धारणा पर टिकी है, जिसके बिना वह इस व्याख्या तक नहीं पहुँचता: कि स्त्री की पुरुष के अधीनता सृष्टि से ही है, अर्थात परमेश्वर की इच्छा से है। यदि ऐसा न होता, तो वह इन दोनों पदों की वैसी व्याख्या नहीं कर सकता था जैसी वह करता है।

यहीं पर मत अलग-अलग हो जाते हैं। उत्पत्ति 2 से न प्रत्यक्ष रूप से और न अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष और स्त्री के बीच पद-स्थिति का ऐसा कोई अंतर पहचाना जा सकता है। बल्कि इसका उलटा!

1 कुरिन्थियों 11 से भी यह नहीं निकाला जा सकता, यहाँ भी इसका उलटा है। इस अध्याय का मुख्य कथन यह है (1 कुरिन्थियों 11:11-12):

11 तौभी प्रभु में न तो स्त्री पुरुष के बिना है, और न पुरुष स्त्री के बिना। 12 क्योंकि जैसे स्त्री पुरुष से है, वैसे ही पुरुष स्त्री के द्वारा है; परन्तु सब वस्तुएँ परमेश्वर से हैं।

पुरुष का सिर होना उसके अधिकार को नहीं दिखाता, बल्कि इस पद के तथ्य को: स्त्री पुरुष में से ली गई या उससे उत्पन्न हुई, वह उसके साथ सहायक के रूप में जोड़ी गई है, अधीन होकर नहीं, बल्कि बराबरी पर, समान स्तर पर।

1 तीमुथियुस 2 से असमानता निकाली जा सकती है। यदि कार्सन 1 कुरिन्थियों 14 के इन दोनों पदों को किसी भी प्रकार सरल नहीं बताता, तो यह बात इस पाठ पर और भी अधिक लागू होती है।

11 स्त्री चुपचाप पूरी अधीनता में सीखे। 12 परन्तु मैं स्त्री को न शिक्षा देने की अनुमति देता हूँ, न पुरुष पर प्रभुता करने की, बल्कि चुप रहने की, 13 क्योंकि आदम पहले रचा गया, उसके बाद हव्वा; 14 और आदम बहकाया नहीं गया, परन्तु स्त्री बहकाई गई और अपराध में पड़ गई।

स्पष्ट है कि, जैसा 1 तीमुथियुस की पत्री दिखाती है, इफिसुस की कलीसिया में भारी समस्याएँ थीं। अन्य बातों के साथ वहाँ स्पष्ट रूप से एक विशेष स्त्री थी, जो ठीक उसका उलटा कर रही थी जिसकी यहाँ माँग की गई है। वह पहले सीख नहीं रही थी, बल्कि अहंकारपूर्ण ढंग से शिक्षा दे रही थी, संभवतः ऊपर से झूठी शिक्षा भी।

इस प्रकार वह न अपने पति के लिए सहायक थी, न किसी दूसरे पुरुष के लिए, जिसे वह शिक्षा देती थी। यहाँ प्रभुता करना कोई शिक्षा का अधिकार नहीं है, और न ही कोई स्वस्थ या परमेश्वर द्वारा चाहा गया अधिकार। इसका अर्थ बल्कि अधिकार को हथिया लेना है, जैसा अब अंग्रेज़ी बाइबल अनुवादों में भी पाया जाता है।

यह कि आदम पहले रचा गया, कोई अधिकार उत्पन्न नहीं करता। पशु भी उससे पहले रचे गए थे। इफिसुस की इस स्त्री के उदाहरण के रूप में पौलुस हव्वा का उल्लेख करता है, जो बहकाई गई थी। इससे वह बताता है कि इस स्त्री के साथ क्या हुआ और अंततः हर स्त्री और हर पुरुष के साथ क्या हो सकता है। बहकाए सब जा सकते हैं।

आदम को आज्ञा तब मिली जब हव्वा अभी नहीं थी। उसे उसे बेहतर ढंग से सिखाना चाहिए था, और शायद उसे भी स्वयं को बेहतर ढंग से सिखाए जाने देना चाहिए था।

इससे स्त्रियों के लिए शिक्षा देने पर एक सामान्य प्रतिबंध निकालना, नरम शब्दों में कहें तो, विश्वसनीय नहीं है और उन दूसरे पाठों के विरुद्ध है जिनसे यह संकेत मिलता है कि स्त्रियाँ शिक्षा देती थीं (प्रिस्किल्ला [Priscilla] आदि)।

अंत में: कार्सन "लज्जा की बात" शब्द को कैसे समझाता है, यह खुला रहता है। तो क्या यह लज्जा की बात होती यदि कोई स्त्री किसी पुरुष की भविष्यद्वाणी का मूल्यांकन करे? और तब भी, जब वह किसी स्त्री की भविष्यद्वाणी का मूल्यांकन करे? परमेश्वर के सामने लज्जा की बात, या सांस्कृतिक संदर्भ के लिए?

एकहार्ट जे. श्राबेल (Eckhard J. Schnabel)

Schnabel, E. J., Der erste Brief des Paulus an die Korinther

Historisch-Theologische Auslegung Neues Testament, SCM R. Brockhaus/Brunnen Verlag, Witten/Gießen, चौथा संस्करण 2018

34 यह निर्देश: **स्त्रियाँ कलीसिया की सभाओं में चुप रहें** कुछ लोगों द्वारा इस प्रकार समझा जाता है कि स्त्रियाँ सार्वजनिक आराधना सभाओं में बोलकर बिलकुल भाग नहीं ले सकतीं। दूसरे लोग इस कथन को इतना समस्याजनक मानते हैं कि वे पौलुस से इस निर्देश की अपेक्षा नहीं करते, परिणाम यह कि पद 34–35 को एक अ-पौलुसीय टिप्पणी (ग्लॉस) मानकर अलग कर दिया जाता है।

पहला मत प्राचीन कलीसिया से लेकर धर्मसुधारकों तक माना जाता रहा, जिसमें लूथर (Luther), श्पेनर (Spener), ज़िन्ज़ेनडॉर्फ़ (Zinzendorf) और दूसरों ने अपवाद स्वीकार किए, उदाहरण के लिए ऐसी परिस्थितियों में जहाँ कोई पुरुष उपस्थित न हो। कुछ मसीही समूह और संप्रदाय आज तक यही मत रखते हैं और स्त्रियों को, उदाहरण के लिए, पवित्रशास्त्र-पाठ में भाग लेने से या प्रभु-भोज में सहभागिता से बाहर रखते हैं। कुछ व्याख्याकार (पुरुष और स्त्री), जो पद 34–35 को प्रामाणिक मानते हैं, इन कथनों में पौलुस की स्त्री-द्वेषी मनोवृत्ति का और पूरी बाइबल के पुरुष-वर्चस्ववाद का प्रमाण देखते हैं।

बहुत से व्याख्याकार तथाकथित mulier-taceat अंश को एक अ-पौलुसीय टिप्पणी या प्रक्षेप मानकर अलग कर देते हैं – या तो पद 34–35, या पद 33b–35, या पद 33b–36। इस स्रोत-आलोचनात्मक प्रक्रिया के लिए पाठ-आलोचनात्मक और साहित्य-आलोचनात्मक कारण प्रस्तुत किए जाते हैं। हस्तलिपियों के साक्ष्य की चर्चा के लिए ऊपर पाठ-आलोचनात्मक टिप्पणियाँ देखें: यदि सामान्य कसौटियाँ लागू की जाएँ, तो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि ये पद पत्री के मूल पाठ का भाग थे। साहित्य-आलोचनात्मक कारण इन बातों से संबंधित हैं: 1. यह तर्क कि पद 34–35 विचारों के क्रम को तोड़ते हैं; 2. संदर्भ की ओर संकेत, जिसमें अन्य भाषाओं में बोलने और भविष्यद्वाणी और कलीसिया की उन्नति में उनके योगदान की बात है, जबकि पद 34–35 में इन सब की कोई बात नहीं है; 3. कथित रूप से अ-पौलुसीय वाक्यांश; 4. **पद 34–35 और 11:5 के बीच का विरोध, जो निर्णायक तर्क माना जाता है, जिसे "स्पष्ट" कहा जाता है और अक्सर इस निर्णय के साथ जोड़ा जाता है कि इसे "किसी भी दशा में सुलझाया नहीं जा सकता"**। यह दावा बहुत कुछ प्रकट करता है कि पद 34–35 के कथन की, भले ही वह पौलुस से आया हो, कोई "धर्मवैज्ञानिक वैधता" नहीं होगी, क्योंकि उसमें वह समझ में आने वाला कारण नहीं है जो किसी ठोस उपदेशात्मक निर्देश के लिए आवश्यक होता है। इन आपत्तियों का उत्तर पाठ की व्याख्या के क्रम में दिया जाएगा।

किसी ऐसे पाठ को टिप्पणी (ग्लॉस) मानकर अलग कर देना, जो स्पष्ट रूप से किसी उपलब्ध दस्तावेज़ के मूल पाठ का भाग है, हमेशा निराशा का कार्य होता है। न धर्मवैज्ञानिक मत और न political correctness ऐसी कसौटियाँ हैं जो साहित्यिक प्रामाणिकता के प्रश्नों का पर्याप्त विश्वसनीयता से उत्तर दे सकें। व्याख्या-विशेषज्ञ उस पाठ को, जिसकी उन्हें व्याख्या करनी है, स्वयं नहीं गढ़ते, बल्कि वे पाठ को जैसा है वैसा पाते हैं और जितना हो सके उसे समझाना होता है। लेखक के इसी प्रकार के दूसरे कथनों से तुलना करके और संदर्भ के सावधान विश्लेषण द्वारा समाधान खोजना इतिहासकारों के लिए स्वाभाविक बात है। **कठिन पाठों में कभी-कभी ऐसे स्पष्टीकरणों से संतोष करना पड़ता है जो विश्वसनीय हैं, पर शायद पूरी तरह संतोषजनक नहीं। किसी कठिन पाठ को हटा देना एक ultima ratio (अंतिम उपाय) है, जो बहुत से (और केवल रूढ़िवादी ही नहीं) व्याख्या-विशेषज्ञों के निर्णय में पद 34–35 के मामले में अनावश्यक है।**

कुछ सुझाव, जो पद 34–35 को पौलुसीय पाठ के रूप में समझाने का प्रयास करते हैं, विश्वसनीय नहीं हैं।

1. 11:5 और 14:34–35 के कथन कुरिन्थियों के साथ पत्र-व्यवहार के अलग-अलग चरणों को दर्शाते हैं; मौन की आज्ञा एक बाद की पत्री का भाग है, जिसमें पौलुस ने अधिक ताज़ा जानकारी के आधार पर कुरिन्थुस के उत्साहवाद को शांत करने के लिए कठोर कदम उठाने को स्वयं को विवश पाया। समस्याजनक विभाजन-परिकल्पना के अतिरिक्त यह स्पष्टीकरण 11:16 और 14:33b में दूसरी कलीसियाओं के हवाले के कारण विफल हो जाता है।

2. पद 34–35 का पाठ पौलुस ने लिखा, परन्तु अपनी राय के रूप में नहीं, बल्कि कुरिन्थियों की पत्री से **एक उद्धरण के रूप में**, जिसमें पुरुष-वर्चस्ववादी स्त्रियों को बोलने से रोकना चाहते थे; पद 36 में वह इस मत को अस्वीकार करता है। **पाठ के शब्दों में ऐसा कोई संकेत नहीं है जो पाठक को बताए कि पद 34–35 में बात एक उद्धरण की है और पद 36 में पौलुस की टिप्पणी की।**

3. 11:5 में पौलुस स्त्रियों की भागीदारी के लिए एक छूट देता है, परन्तु अनिच्छा से, और सिर ढकने या केश-विन्यास के प्रश्न के संबंध में; 14:34–35 में हम उसकी वास्तविक राय सुनते हैं। परन्तु यह कि 11:5 एक छूट है, न शब्दों से और न संदर्भ से प्रमाणित किया जा सकता है।

4. 11:5 में बात निजी घरेलू प्रार्थना-सभाओं की है, 14:34–35 में सार्वजनिक आराधना की। परन्तु अध्याय 11 में पूरी तरह कलीसिया की सभाओं की बात है, जो उस समय घरों में इकट्ठी होती थीं, अर्थात घरेलू सभाओं और कलीसिया की सभाओं के बीच कोई अंतर था ही नहीं।

5. 11:5 में अविवाहित स्त्रियों की बात है, जो सार्वजनिक रूप से भविष्यद्वाणी कर सकती हैं, जबकि 14:34–35 में विवाहित स्त्रियों की बात है। दोनों ऐसी धारणाएँ हैं जो पाठ से अनिवार्य रूप से नहीं निकलतीं, और विशेषकर 11:5 के संबंध में विश्वसनीय नहीं हैं।

6. धर्मसुधारकों और पायटिस्टों (धर्मनिष्ठावादियों) के यहाँ अक्सर यह स्पष्टीकरण मिलता है कि 11:5 में पदधारी स्त्रियों की बात है, जो सार्वजनिक रूप से प्रार्थना और भविष्यद्वाणी कर सकती हैं, और 14:34–35 में कलीसियाई पद से रहित स्त्रियों की। ऐसा भेद न पाठ में पहचाना जा सकता है और न पहली शताब्दी की मसीही कलीसियाओं के लिए विश्वसनीय है।

7. पौलुस रब्बियों की परंपरा का अनुसरण करता है, जिसके अनुसार स्त्रियाँ आराधना में कोई आधिकारिक भूमिका नहीं निभाती थीं और न शिक्षा-भवन में प्रश्न पूछ सकती थीं। संबंधित रब्बी-पाठों के काल-निर्धारण की समस्या के अतिरिक्त यह स्पष्टीकरण भी ठोस नहीं है: 1 कुरिन्थियों में पौलुस कहीं भी आधिकारिक और अनाधिकारिक भूमिकाओं के बीच भेद नहीं करता।

8. 14:34–35 में पौलुस स्त्रियों के बाधा डालने वाले **बीच में बोलने या बीच में प्रश्न पूछने** को रोकता है, न कि स्त्रियों के आत्मा द्वारा प्रेरित प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करने को। यह स्पष्टीकरण मानकर चलता है कि पद 33b से आराधना में क्रम की एक दूसरी समस्या पर विचार किया जा रहा है, जिसका पाठ में कोई संकेत नहीं है। **यह भी स्पष्ट नहीं होता कि पौलुस केवल बीच में बोलने वाली स्त्रियों की बात क्यों करता है, क्योंकि बीच में बोलने वाले पुरुषों की भी भली-भाँति कल्पना की जा सकती है।**

9. अधिक विश्वसनीय यह सुझाव है कि पौलुस कलीसिया में स्त्रियों की अलग-अलग भूमिकाओं की बात करता है, जो दो सामाजिक अनुभवों को दर्शाती हैं: 11:5 में आराधना में प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करने की बात है, 14:34–35 में पुरुषों के परामर्शों और शिक्षा-संवादों की। ई. और डब्ल्यू. श्टेगेमान (E. und W. Stegemann)

का यह स्पष्टीकरण सही पहचानता है **कि सांस्कृतिक परंपराएँ भूमिका निभाती हैं, जिनमें पुरुषों की सम्मान-धारणाएँ और स्त्री की लज्जा भूमिका निभाती हैं**; "आराधना-अनुष्ठानों" और "परामर्शों" का भेद विश्वसनीय नहीं है; साथ ही ये "परामर्श", जिन्हें "शिक्षा-संवाद" कहा गया है, उतने ही धुँधले रहते हैं जितना लज्जा का कारण। **अध्याय 11 के संदर्भ में पद 34–35 को समझने की कुंजी इन बातों की ओर संकेत है: 1. अधिकार की ओर: पद 34 में पौलुस अधीनता की बात करता है, 11:2–12 में पुरुष के स्त्री का "सिर" होने की; 2. स्त्रियों के उन पुरुषों के साथ संबंध की ओर, जिनसे वे "घर पर" पूछ सकती हैं (पद 35); 3. लज्जा की ओर (αἰσχρός, पद 35)। पद 34–35 में स्पष्ट रूप से ऐसी बातों की चर्चा है जिनमें सांस्कृतिक प्रश्न भूमिका निभाते हैं, जिनमें स्त्री का उसके लिए उत्तरदायी पुरुष – पति, या पिता, या संरक्षक – के साथ संबंध और सार्वजनिक व्यवहार तथा "घर पर" के व्यवहार के बीच का अंतर निर्णायक थे।** ठीक पहले के संदर्भ में भविष्यद्वाणी के कथनों के मूल्यांकन की बात है (पद 29–33), बाद के संदर्भ में पद 37 में भी भविष्यद्वक्ताओं का उल्लेख है। **इसलिए निम्नलिखित स्पष्टीकरण सबसे अधिक विश्वसनीय है। कुरिन्थुस की कलीसिया में स्त्रियाँ उस प्रक्रिया में भाग लेती थीं जिसके द्वारा भविष्यद्वाणियों को परखा और उनका मूल्यांकन किया जाता था (पद 29)।** उनके पास स्वयं भविष्यद्वाणी के कथन का अनुग्रह-वरदान था या नहीं, यह संभव है, परन्तु पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक नहीं। इन मूल्यांकनों के क्रम में ऐसे मामले हुए जिनमें स्त्रियों ने उन भविष्यद्वाणियों के बारे में निर्णय दिया जो उनके पतियों, पिताओं या संरक्षकों ने सुनाई थीं। **pater familias (परिवार के मुखिया) से आलोचनात्मक पूछताछ को पति या पिता के अधिकार के विरुद्ध अपमान (αἰσχρός) और घर-परिवार की व्यवस्था को, और इस प्रकार कलीसिया की व्यवस्था को भी, खोखला करने वाला माना जाता। पौलुस स्त्रियों को निर्देश देता है कि अपने पतियों, पिताओं या संरक्षकों की भविष्यद्वाणियों के संबंध में उनके जो प्रश्न हों, उन्हें वे घर पर पूछें, ताकि घर और कलीसिया दोनों के लिए शालीनता बनी रहे।**

इस व्याख्या के विरुद्ध एक लोकप्रिय आपत्ति यह संकेत है कि यह सब ठीक-ठीक पाठ में नहीं लिखा है। यह सही है, परन्तु **जिन धारणाओं को मानकर चला गया है, उनके पाठ में स्पष्ट आधार हैं (स्त्रियाँ, पुरुष, घर, लज्जा) और वे ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से विश्वसनीय हैं।** डब्ल्यू. श्राग (W. Schrage) की एकमात्र आपत्ति, कि "यह उचित ठहराना कठिन है कि ठीक पद 29b ही क्यों निशाने पर हो और भविष्यद्वाणी करने की योग्यता में उसके संभावित मूल्यांकन की योग्यता भी क्यों शामिल न हो", ठोस नहीं है; वह स्त्रियों के सार्वजनिक व्यवहार की उन कसौटियों को अनदेखा करती है जो समकालीन समाज में निर्णायक महत्व की थीं।[39]

स्त्रियाँ **अधीन रहें** (ἀλλὰ ὑποτασσέσθωσαν)। विरोधसूचक संयोजक ἀλλά स्पष्ट करता है **कि स्त्रियों का चुप रहना स्त्रियों की अपने पतियों के प्रति अधीनता से संबंधित है, अर्थात "श्रेणीगत" या "सामान्य" अर्थ में अभिप्रेत नहीं है**।

वाक्यांश: **जैसा व्यवस्था भी कहती है** (καθὼς καὶ ὁ νόμος λέγει) बहुत से लोगों द्वारा उत्पत्ति 3:16 ("तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा") से जोड़ा जाता है, परन्तु यह कठिन है, क्योंकि वहाँ न स्त्री के चुप रहने की बात है और न स्त्री की अधीनता की। गिनती 12:1–15 को भी संदर्भ-पाठ के रूप में सुझाया गया है: मरियम, जिसे भविष्यद्वाणी का वरदान मिला था, परमेश्वर द्वारा दंडित की गई जब उसने मूसा के अधिकार पर प्रश्न उठाया, जबकि हारून, जिसने भी मूसा पर प्रश्न उठाया था, दंडित नहीं किया गया। रब्बियों की व्याख्या ने इस तथ्य के लिए कि स्त्रियाँ सार्वजनिक आराधना सभाओं में नहीं बोलती थीं, व्यवस्थाविवरण 22:16 ("और कन्या का पिता पुरनियों से कहे") का सहारा लिया; Sifre Deut 22,16 §235 (117b) में लिखा है: "इससे

यह निकलता है कि स्त्री को पुरुष के स्थान पर (या: पुरुष के बदले) बोलने का अधिकार नहीं है"। अधिक विश्वसनीय यह स्पष्टीकरण है कि पौलुस सामान्य रूप से सृष्टि की व्यवस्था (उत्पत्ति 2) की ओर संकेत करता है।

बात सामान्य रूप से बोलने (λαλεῖν) की नहीं है, बल्कि ऐसे बोलने की है जो "लज्जा" लाता है (αἰσχρόν ἐστιν), अर्थात जो अशोभनीय, लज्जाजनक, निंदनीय है। 11:5 में पौलुस ने उन स्त्रियों की बात की जो उघाड़े सिर प्रार्थना करती हैं और इस प्रकार अपने "सिर" का अपमान करती हैं, अर्थात अपने पति (या पुरुष) को लज्जित करती हैं। यहाँ भी वही सांस्कृतिक संदर्भ है: स्त्री कलीसिया की सभा की सार्वजनिकता में अपने पति (या पुरुष) के सम्मान को ठेस न पहुँचाए और इस प्रकार उसे लज्जित न करे।

जब कोई स्त्री आराधना में प्रार्थना करती या भविष्यद्वाणी करती है, तो वह अपने पति को लज्जित नहीं करती। परन्तु जब वह आलोचनात्मक प्रश्नों द्वारा उसके भविष्यद्वाणी के कथन की प्रामाणिकता की जाँच करती है, तब वह निश्चय ही उसे लज्जित करती है – जिरह हमेशा एक शर्मनाक और अपमानजनक मामला होती है, विशेषकर जब उसका परिणाम नकारात्मक हो, और इसलिए (विवाहित) स्त्रियाँ इस प्रक्रिया में भाग न लें।

HJR की टिप्पणी: श्नाबेल के कार्यों में शायद ही कभी कुछ ऐसा जोड़ा जा सकता है जिसका वह पहले से उल्लेख न कर चुका हो या जिस पर उसने विचार न किया हो। उसकी टीकाएँ एक बड़ा लाभ हैं। यहाँ उल्लिखित सब विशेषज्ञों के लिए तर्कों का अलग-अलग महत्व है और इसलिए निष्कर्ष भी अलग-अलग हैं। उसका स्पष्टीकरण विश्वसनीय है, परन्तु, जैसा वह स्वयं स्वीकार करता है, पाठ से उतने सीधे रूप में नहीं निकलता। शायद यह सब स्पष्टीकरण-प्रयासों में सबसे अच्छा है। इस संभावना को कि यह पाठ एक उद्धरण है – जैसे इस पत्री के कुछ दूसरे स्थान – वह बिना किसी विश्वसनीय कारण के ख़ारिज कर देता है। अपने परिवेश के साथ इन पदों के विरोध और उनकी प्रामाणिकता पर संदेहों को, मेरी दृष्टि में, बहुत कम स्थान मिलता है। हर हाल में उसके लिए यह स्पष्ट है कि यह पूर्ण मौन की आज्ञा नहीं हो सकती, चाहे इसे कैसे भी घुमाया-फिराया जाए।

सारांश और व्यक्तिगत निष्कर्ष

इन दो पदों की व्याख्या के बारे में चार मुख्य मत (अपने-अपने रूपांतरों के साथ) हैं:

- आराधना में स्त्रियों का पूर्ण मौन
- सशर्त या परिस्थिति-संबंधी मौन, या उचित भागीदारी (जैसी पुरुषों से भी ठीक वैसे ही माँगी जाती है) – कुछ लोगों के यहाँ यह सीमा: शिक्षा देना नहीं और इसलिए भविष्यद्वाणियों का मूल्यांकन भी नहीं
- यह एक उद्धरण है, जिसे पौलुस उसका खंडन करने के लिए प्रस्तुत करता है।
- यह बाद में जोड़ा गया अंश है और मूल रूप से पौलुस का नहीं है।

इनमें से कोई भी रूप 100 % निश्चित या समस्याओं से रहित नहीं है! विषय-वस्तु की दृष्टि से मैं पिछले योगदानों में कुछ नहीं जोड़ सकता। मेरा झुकाव उद्धरण की ओर या टिप्पणी (ग्लॉस) की ओर है, अर्थात एक अ-पौलुसीय जोड़ की ओर। मेरा मुख्य कारण:

मेरी समझ में पद 34 पूर्ण मौन की आज्ञा है। स्त्रियों को प्रश्न पूछने तक की अनुमति नहीं थी (पद 35)। यदि उन्हें प्रश्न पूछने तक की अनुमति नहीं थी, तो मेरे लिए इसका अर्थ है: पूर्ण मौन।

परन्तु 14वें अध्याय और पूरी पत्री के संदर्भ में यह संभव नहीं है। विशेषकर 1 कुरिन्थियों 11:5 एक मूलभूत कथन है। वह सामान्य प्रथा का वर्णन करता है, सभा के भीतर और बाहर भी। इसकी पृष्ठभूमि आत्मिक वरदान हैं, जो पुरुषों और स्त्रियों दोनों को मिलते हैं, और सब विश्वासियों का याजकपद (जिस पर कुरिन्थियों की पत्री फिर भी स्पष्ट रूप से विचार नहीं करती)। पूरे नए नियम में भी यह संभव नहीं है। इसके विरुद्ध यह बात है कि यीशु स्त्रियों के साथ कैसे व्यवहार करते थे। इसके विरुद्ध यह भी है कि पौलुस की सहकर्मी स्त्रियाँ थीं, और वह उनकी सेवाओं का कैसे वर्णन करता है।

जिस व्यवस्था का उल्लेख है, वह कहीं नहीं मिलती – उत्पत्ति 2 या 3 से जोड़े गए संबंध बहुत अस्पष्ट हैं और स्वयं ही पितृसत्तात्मक दिशा में की गई व्याख्या हैं। इस प्रकार लिंगों के संबंध को सममित नहीं, बल्कि असममित-पदानुक्रमित रूप में निर्धारित किया जाता है और इसी से अधीनता और मौन को उचित ठहराया जाता है। यदि पहले मनुष्यों के संबंध को समानता के रूप में समझा जाए, तो ये कारण अपने आप ढह जाते हैं। नए नियम में अधीनता हमेशा परस्पर होती है और परमेश्वर के राज्य और उसकी कलीसिया में कभी भी पदानुक्रमित अंतरों पर आधारित नहीं होती। मसीह में ये अंतर मिट गए हैं – संसार और उसके संबंधों में नहीं, परन्तु कलीसिया में अवश्य, जो पहले से ही नई सृष्टि है। इसलिए जो उत्पत्ति 2 और 3 में चूक जाता है, वह पौलुस के पाठों की अच्छी व्याख्या नहीं कर पाएगा।

- यदि यह एक जोड़ है, तो यह मुझे उस झूठे बीज, या उन जंगली दानों की तरह लगता है, जो अच्छे बीज के बीच बोए गए और अंत तक बढ़ते रहते हैं। मेरी समझ में इन दोनों पदों के प्रभाव का इतिहास एक विपत्ति है। चुप रहने वाली स्त्रियाँ ठीक वही हैं जो पुराना साँप चाहता है – ठीक वैसे ही जैसे यह पता लगाने के लिए अध्ययन और झगड़ों में लगे लाखों घंटे कि इन शब्दों का अर्थ क्या हो सकता है। क्या परमेश्वर ऐसा होने दे सकता है? वह और भी बहुत कुछ होने देता है, जिसे हम नहीं समझते!
- उद्धरण के रूप में यह अर्थपूर्ण है, क्योंकि ये पौलुस के शब्द और विचार नहीं हैं। परन्तु तब भी, मेरी समझ में, यह उद्धरण इस स्थान पर अच्छी तरह नहीं बैठता।
- यदि ये पौलुस के शब्द हैं, तो उसका अभिप्राय पूर्ण मौन नहीं हो सकता। इस स्थिति में मैं (पति की) भविष्यद्वाणियों के मूल्यांकन पर प्रतिबंध को सीधे संदर्भ में सबसे अच्छा स्पष्टीकरण मानूँगा।

“समय पूरा हुआ और हर कोई स्तब्ध देखता है,

परदा गिर गया और सब प्रश्न खुले रहते हैं।” (बेर्टोल्ट ब्रेख़्त [Bertolt Brecht], “Der gute Mensch von Sezuan” के आधार पर स्वतंत्र रूप से; इसी विषय पर एरविन श्मिट [Erwin Schmidt] के यहाँ मिला।)

ब्रदरन आंदोलन पर एक बार फिर

जिसने अलग-अलग अंश पढ़े हैं, वह पाएगा कि ठीक ब्रदरन आंदोलन ही है जिसने पूर्ण मौन की आज्ञा का समर्थन किया, उसे लागू किया और उसका बचाव किया। मैं स्वयं इसी आंदोलन में, तथाकथित “एक्सक्लूसिव” (बहिष्कारी) शाखा में, बड़ा हुआ। 40 वर्ष की आयु में ही मैं एक स्थानांतरण के बाद एक संतुलित मसीही कलीसिया (केम्पटेन [Kempten]) में आया। तब तक मैं स्वयं ब्रदरन के इस रूप का समर्थन करता था। परन्तु स्वीकार करता हूँ कि जब से मुझे याद है, यह मुझे हमेशा संदिग्ध लगा। इसलिए नहीं कि मैं नारीवादी हूँ। मेरा हृदय कभी इसके लिए पूरी तरह हाँ नहीं कह सका। और “ब्रदरन” के बाहर के मसीहियों के सामने मैं कभी इसे सचमुच विश्वसनीय ढंग से उचित नहीं ठहरा सका। जब कोई दूसरे व्याख्या-विशेषज्ञों को पढ़ता है, जिन्हें मैं बाइबल के प्रति निष्ठावान और

परमेश्वर के वचन से प्रेम करने वाले के रूप में जानता हूँ, तो पाता है: वे यह दृष्टिकोण नहीं रखते। क्यों नहीं? दूसरे ढंग से पूछें: ब्रदरन आंदोलन के भाइयों को इस मौन की आज्ञा में ऐसा क्या विशेष, ऐसा क्या बचाव-योग्य लगता है? मेरा मानना है कि अत्यंत गहराई से जाँचना चाहिए कि यह बहनों पर, अर्थात उपस्थित लोगों के 50 % पर, क्यों लागू हो। और तब तो और भी, जब दो छोटे वाक्यों की इतनी दूरगामी और कलीसिया की हानि वाली व्याख्या की जाती है। और जब यह आंदोलन उन्हें लगभग अपनी एक अनूठी पहचान की तरह मानता है और अपने अलगाव को भी इसी से उचित ठहराता है।

अब बात यह है कि बहनों के लिए आराधना सभा में प्रार्थना करने और भविष्यद्वाणी करने की कोई सकारात्मक आज्ञा, कोई निर्देश नहीं है। मौन से निकाले गए इस तर्क[40] को कोई अपने पक्ष में इस प्रकार समझ सकता है। परन्तु मैं ठीक उतने ही अच्छे ढंग से यह भी कह सकता हूँ: यह इतना स्वाभाविक नियम था और प्रेरितिक लेखों द्वारा समर्थित था (यह भी मौन से निकाला गया तर्क है) कि इस निर्देश की आवश्यकता ही नहीं थी।

निम्नलिखित व्यक्तियों की, उनके वरदानों और सेवाओं के साथ, और निम्नलिखित घटनाओं की, यदि कोई पूर्वाग्रह से मुक्त हो, सार्वजनिक बोलने के बिना कल्पना नहीं की जा सकती – सभा में बोलने के बिना भी नहीं:

प्रेरितों के काम 2:17-18: और परमेश्वर कहता है, अंतिम दिनों में ऐसा होगा कि मैं अपना आत्मा सब प्राणियों पर उंडेलूँगा, और तुम्हारे बेटे और तुम्हारी बेटियाँ भविष्यद्वाणी करेंगी, और तुम्हारे जवान दर्शन देखेंगे, और तुम्हारे बूढ़े स्वप्न देखेंगे। 18 और उन दिनों में मैं अपने दासों और अपनी दासियों पर भी अपना आत्मा उंडेलूँगा, और वे भविष्यद्वाणी करेंगे।

प्रेरितों के काम 21:8-9: अगले दिन हम वहाँ से चलकर कैसरिया में आए; और हम सुसमाचार-प्रचारक फिलिप्पुस के घर गए, जो सातों में से एक था, और उसके यहाँ ठहरे। 9 उसकी चार कुँवारी बेटियाँ थीं, जो भविष्यद्वाणी करती थीं।

भविष्यद्वाणी (अर्थात परमेश्वर की ओर से और उसके लिए बोलना) पौलुस के यहाँ कलीसिया के इकट्ठे होने का एक आवश्यक अंग है: "इसलिए, मेरे भाइयो, **भविष्यद्वाणी करने** की लालसा रखो, और अन्य भाषाओं में बोलने से मना न करो" (1 कुरिन्थियों 14:39)। प्रेरितों के काम 2 तो ठीक इसी सभा/कलीसिया/चर्च का आरंभ है। उसके लिए और उसमें भविष्यद्वाणी होती है, जिसकी पुराने नियम में भी पहले से भविष्यद्वाणी की गई थी। मैं पूछता हूँ, चारों बेटियों ने कहाँ भविष्यद्वाणी की? घर पर? पर किसके लिए? क्या लोग किसी देववाणी की तरह उनके पास आते थे? शायद ही। बाज़ार में? शायद नहीं। सभा में? सबसे अधिक संभावना यही है, क्योंकि पौलुस भविष्यद्वाणी को वहीं रखता है।

रोमियों 16:1: मैं तुमसे फीबे की, जो हमारी बहन है, सिफ़ारिश करता हूँ, जो किंख्रिया की सभा की सेविका (diakonos) भी है।

कोई कैसे कल्पना कर सकता है कि कोई किसी सभा की सेविका हो, पर जब कलीसिया इकट्ठी होती है तब उसे कुछ कहने की अनुमति न हो?

रोमियों 16:12: त्रूफैना और त्रूफोसा को नमस्कार करो, जो प्रभु में परिश्रम करती हैं। प्रिय पिरसिस को नमस्कार करो, जिसने प्रभु में बहुत परिश्रम किया है।

कोई सहज रूप से कैसे कल्पना कर सकता है कि प्रभु में परिश्रम किया जाए, पर जब कलीसिया इकट्ठी होती है तब कुछ न कहा जाए?

फिलिप्पियों 4:2-3: मैं यूओदिया को समझाता हूँ, और सुन्तुखे को समझाता हूँ, कि वे प्रभु में एक मन रहें। 3 हाँ, हे सच्चे सहकर्मी, मैं तुझसे भी विनती करता हूँ कि तू उनकी सहायता कर, जिन्होंने सुसमाचार में मेरे साथ संघर्ष किया है ...

कोई सुसमाचार में साथ संघर्ष कैसे कर सकता है, यदि उसे आराधना में कुछ कहने की अनुमति न हो? दोनों स्त्रियाँ फिलिप्पी की कलीसिया में अगुवाई करने वाली प्रतीत होती हैं। अन्यथा ठीक उनकी असहमति को पूरी कलीसिया के लिए खतरा क्यों माना जाता? यदि उन्होंने इकट्ठी हुई कलीसिया में कभी कुछ नहीं कहा, तो यह सब न समझ में आता है और न इसकी कल्पना की जा सकती है।

कुलुस्सियों 4:15: लौदीकिया के भाइयों को और नुमफा को और उस सभा को जो उसके घर में है, नमस्कार कहना।

नुमफा के घर में सभा होती थी। उसने मेज़बान के रूप में अपना घर उपलब्ध कराया, शायद इसलिए कि वह या उसका पति धनी थे। क्या पूर्वाग्रह के बिना यह कल्पना की जा सकती है कि उसने आराधना में कभी अपनी आवाज़ नहीं उठाई?

अब इन सब पाठों को – और भी हैं – केवल 1 कुरिन्थियों 14:34-35 के चश्मे से समझाया जा सकता है। तब कोई दूसरे निष्कर्षों पर पहुँचता है। इस प्रकार इन दोनों पदों को यहाँ दिए गए सब दूसरे पाठों पर व्याख्या का सर्वोच्च अधिकार दे दिया जाता। परन्तु यह निर्णय इसलिए गलत है क्योंकि यह सब दूसरे पाठों के अधिक वज़न को दबा देता है। यह कोई सावधानीपूर्वक तौलना और तुलना करना नहीं है, बल्कि दुर्भाग्य से एक मनमाना निर्धारण है। विशेषकर इसलिए भी कि बाइबल का एक भी दूसरा स्थान इस मौन की आज्ञा का स्पष्ट समर्थन नहीं करता।

और वह भी तब, जब ठीक ब्रदरन आंदोलन ने ही विश्वासियों के सर्वसामान्य याजकपद का बचाव किया। यह उसकी पहचान थी और उसकी शक्ति भी। परन्तु जब स्तुति और धन्यवाद के बलिदान चढ़ाए जाते थे, तब बहनों को कैसे भुलाया जा सकता था, यह मेरी समझ में नहीं आता, ठीक उनके पवित्रशास्त्र के बड़े ज्ञान के कारण। यह कि वे साथ गाकर और भीतर ही भीतर, चुपचाप साथ प्रार्थना करके भी आत्मिक बलिदान चढ़ाती हैं, एक कामचलाऊ सांत्वना है। आत्मा स्त्रियों और पुरुषों के द्वारा कार्य करने के लिए स्वतंत्र है। या क्या सभा में आत्मा केवल पुरुषों में कार्य करता है?

Hans-Jörg Ronsdorf, आउग्सबुर्ग (Augsburg), 1 नवंबर 2022

इस बीच पाठ-शोध से मुझे नए तथ्य ज्ञात हुए हैं। वे ऊपर बताए गए मेरे अनुमान की दृढ़ता से पुष्टि करते प्रतीत होते हैं: ये दोनों पद पौलुस के नहीं हैं और इसलिए मान्य नहीं हैं। मैं अपनी पुस्तक "स्त्रियो, हमें क्षमा कीजिए!" (Frauen, vergebt uns!) के चौथे संस्करण से संबंधित पाठ यहाँ ले रहा हूँ:

जैसा चौथे संस्करण की प्रस्तावना में संकेत किया गया है, पुस्तक के इस खंड 6.2.8 को बढ़ाया गया, क्योंकि (कम से कम मेरे लिए) नई जानकारियाँ हैं, जिनका संबंध पुरानी हस्तलिपियों से है। फ़िलिप बार्टन पेन (Philip Barton Payne) ने इस विषय पर गहन कार्य किया है और, कुछ दूसरे पाठ-शोधकर्ताओं की तरह, पहचाना है कि निम्नलिखित विचित्रताएँ हैं: कुछ हस्तलिपियों में पद 34 और 35 वहीं हैं जहाँ वे हमारी बाइबलों में हैं, परन्तु दूसरी हस्तलिपियों में वे पद 40 के बाद हैं। एक अपेक्षाकृत लंबा पाठ खिसकाया गया। यह बहुत असामान्य है और यह अनुमान लगाने देता है: ये पद बाद में जोड़े गए। वे हाशिये पर लिखे हुए थे, और सामान्यतः अगला प्रतिलिपिकार उन्हें पाठ में डाल देता था, क्योंकि शायद वे पहले भूल से छूट गए थे। वही तय करता था कि उन्हें कहाँ डाला जाए।

इस मत को कोडेक्स वैटिकनस (Codex Vaticanus) में हुई एक खोज से बल मिलता है, जो चौथी शताब्दी की सबसे विस्तृत और सबसे महत्वपूर्ण कोडेक्सों में से एक है। वहाँ ये पद वास्तव में एक जोड़ के रूप में चिह्नित हैं:

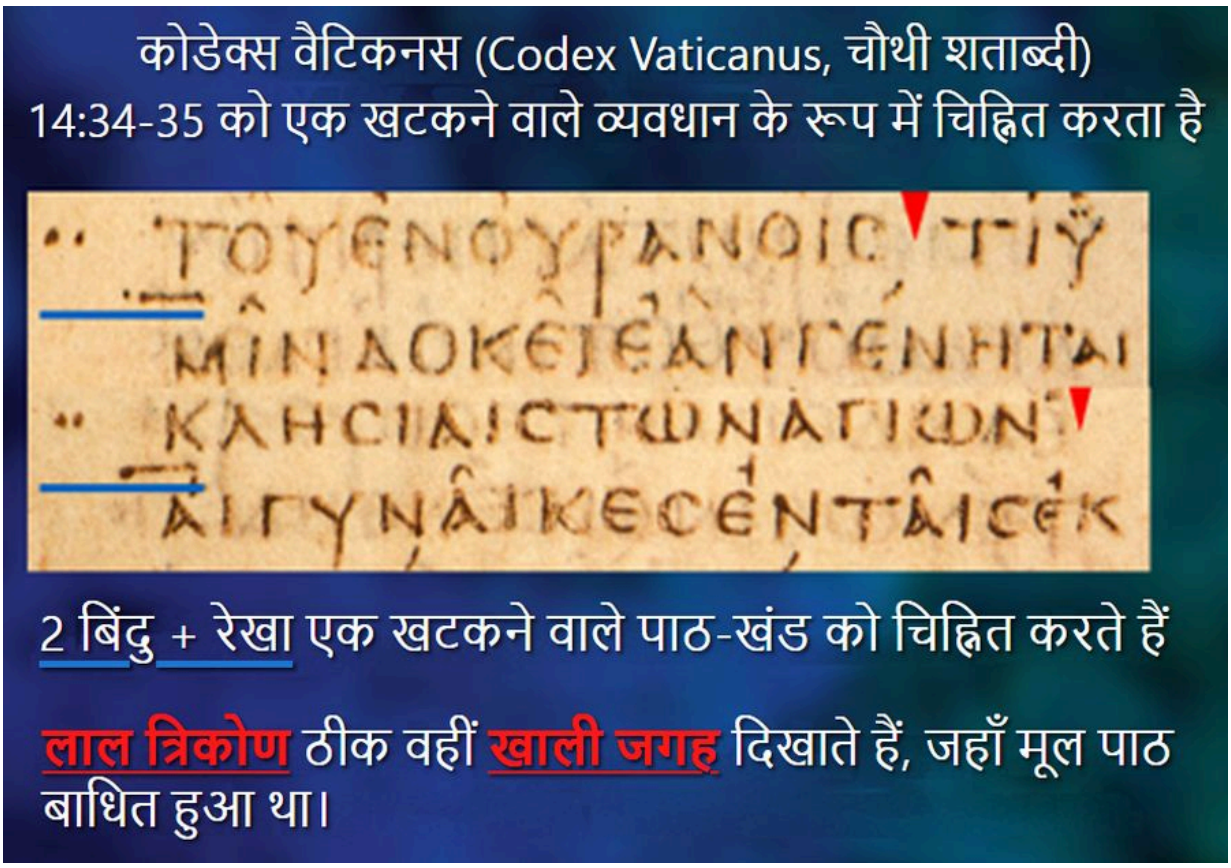

चित्र का स्रोत: Biblioteca Apostolica Vaticana

इस पर मैं फ़िलिप बी. पेन (Philip B. Payne) को उद्धृत करता हूँ, जिन्होंने इस विषय पर अग्रणी शोध किया है: "हस्तलिपियों से निकलने वाले सात कारण और इन पदों के शब्दों से निकलने वाले नौ कारण मुझे और बहुत से दूसरे लोगों को इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि ये पद पौलुस की मूल पत्री में नहीं थे, बल्कि बाद में जोड़े गए। अभी मैं केवल तीन का सारांश दूँगा। पहला, इन पदों का स्पष्ट अर्थ इस अध्याय के उन कथनों के विरुद्ध है कि 'सब' शिक्षा दे सकते हैं और भविष्यद्वाणी कर सकते हैं, और अध्याय 11:5 के इस कथन के विरुद्ध है कि स्त्रियाँ भविष्यद्वाणी करती हैं। दूसरा, पौलुस की पत्रियों की हस्तलिपियों में कोई दूसरा पाठ-अंश नहीं है जो लगभग इतना लंबा हो और जो (अलग-अलग हस्तलिपियों में) दो अलग-अलग स्थानों पर एक दूसरे से इतनी दूर हो, बिना इसके कि इसका कोई स्पष्ट कारण हो।

तीसरा, सबसे पुरानी बाइबल इन पदों को बाद का अप्रामाणिक जोड़ बताती है। पहला, ये पद इस अध्याय के बहुत से दूसरे कथनों के विरुद्ध हैं। विरोधों से बचने के लिए बहुत से लोग कहते हैं कि पौलुस केवल बाधा डालने वाली बकबक को चुप कराता है या, जैसा पहली बार 1962 में सुझाया गया, केवल भविष्यद्वाणियों के मूल्यांकन को। परन्तु ये व्याख्याएँ मौन की उस असीमित माँग के अनुरूप नहीं हैं, जो इस खंड में तीन बार ज़ोर देकर दोहराई गई है। यदि पद 34 केवल भविष्यद्वाणियों के मूल्यांकन को मना करता है, तो वह ऐसे बोलने की भी अनुमति देता है जिसे पद 35 मना करता है। आख़िरकार, कुछ सीखने की इच्छा से प्रश्न पूछना भविष्यद्वाणियों के मूल्यांकन से बिलकुल अलग बात है, और यह शायद ही कभी बाधा डालता है। ये व्याख्याएँ इस परिणाम पर पहुँचाती हैं कि पौलुस उसी बात का खंडन करता जो उसने अभी-अभी लिखी है। दूसरा, सब 'पश्चिमी' यूनानी हस्तलिपियों में ये

पद पद 40 के बाद आते हैं, परन्तु अधिकतर दूसरी हस्तलिपियों में ये पद 33 के बाद आते हैं। यह छठी शताब्दी का प्रसिद्ध 'पश्चिमी' कोडेक्स D है। इस चित्र का पहला पूरा अनुच्छेद अध्याय 14 का अंत है। अगला अनुच्छेद पद 34 और 35 हैं। अंतिम खंड से अध्याय 15 आरंभ होता है। वे दो अलग-अलग स्थान, जहाँ पद 34 और 35 मिलते हैं, यह संकेत देते हैं कि किसी ने उन्हें हाशिये पर लिखा और बाद के प्रतिलिपिकारों ने उन्हें या तो पद 33 के बाद या पद 40 के बाद डाल दिया। मुझे यह समझाने दीजिए:

पवित्रशास्त्र के मूल पाठ के निर्धारण में मूलभूत सिद्धांत यह है: 'जो पाठ दूसरे पाठों की उत्पत्ति को सबसे अच्छी तरह समझाता है, वही सबसे अधिक संभावना से मूल पाठ है।' पौलुस की किसी पत्री की कोई हस्तलिपि बिना किसी दिखाई देने वाले कारण के किसी बड़े पाठ-खंड को लगभग इतनी दूर नहीं खिसकाती, और आरंभिक समय के किसी पाठक ने इस पाठ के स्थान की आलोचना नहीं की। परन्तु यह सामान्य बात थी कि लेखक हाशिये के पाठ को मुख्य पाठ में उतार लेते थे। उदाहरण के लिए, चौथी शताब्दी के कोडेक्स वैटिकनस में मत्ती के पाठ के हाशिये पर पुराने पाठ वाले 20 स्थान हैं। 3 को छोड़कर ये सब बाद की लगभग सब हस्तलिपियों के मुख्य पाठ में शामिल हैं। यूनानी दृढ़ता से मानते थे कि स्त्रियों को सार्वजनिक सभाओं में चुप रहना चाहिए। इसलिए यह शायद ही आश्चर्य की बात है कि किसी पाठक ने ईसवी 200 से पहले किसी समय हाशिये पर वह 'जानी-मानी या प्रचलित बुद्धि' जोड़ दी, जिसे ये पद व्यक्त करते हैं। उन दो स्थानों का, जहाँ ये पद मिलते हैं, एकमात्र स्पष्टीकरण जो लेखकों की ज्ञात आदतों से मेल खाता है, यह है कि किसी ने पहले इन दोनों पदों को किसी हस्तलिपि के हाशिये पर लिखा और बाद के प्रतिलिपिकारों ने उन्हें या तो पद 33 के बाद या पद 40 के बाद डाल दिया। सामान्य बुद्धि कहती है: कोई सामान्य बात – हाशिये के पाठ को मुख्य पाठ में डालना – किसी ऐसी असाधारण बात से अधिक संभावित है जिसका कोई दूसरा उदाहरण ज्ञात नहीं – इतने अधिक पाठ को बिना किसी स्पष्ट कारण के इतनी दूर खिसकाना। तीसरा, हमारी सबसे पुरानी बाइबल, कोडेक्स वैटिकनस, जिसकी अपनी सटीकता के लिए व्यापक रूप से प्रशंसा की जाती है, इन पदों को, जो कलीसिया में स्त्रियों को चुप कराते हैं, एक अप्रामाणिक, झूठे व्यवधान के रूप में चिह्नित करती है। फिर भी यह सच है कि पद 34-35 सब उपलब्ध हस्तलिपियों में कहीं न कहीं (अर्थात पद 33 या 40 के बाद) आते हैं, जिसके लिए एक असाधारण रूप से प्रारंभिक जोड़ आवश्यक है। परन्तु केवल वैटिकनस ही उन्हें अप्रामाणिक के रूप में चिह्नित नहीं करता। बिशप विक्टर (Victor) ने कोडेक्स फ़ुल्डेन्सिस (Codex Fuldensis) के निचले हाशिये पर एक सुधारा हुआ पाठ लिखवाया, जो इन पदों को छोड़ देता है, और अ-पश्चिमी पाठ MS 88 उन्हें पद 33 के बाद छोड़ देता है, परन्तु पद 40 के बाद ऐसे चिह्नों के साथ डालता है जो बताते हैं कि उन्हें पद 33 के बाद आना चाहिए। चूँकि ये पद 1 कुरिन्थियों के विक्टर के पाठ-साक्षियों में नहीं आते, इसलिए डैन वॉलेस (Dan Wallace) का यह दावा कि 'ये पद 1 कुरिन्थियों के सब पाठ-साक्षियों में आते हैं' सच नहीं है (https://bible.org/article/textual-problem-1-corinthians-1434-35)। पाठ-विद्वान एक ही हस्तलिपि में अलग-अलग पाठों को अलग-अलग हस्तलिपि-चिह्न देते हैं। खंड 14:34-35 उन सब पाठों में नहीं आता जिन्हें इन अलग-अलग हस्तलिपि-चिह्नों द्वारा पहचाना जाता है। **यह सच नहीं है कि 14:34-35 के पाठ का सब हस्तलिपियाँ 'समर्थन' करती हैं।"**

कोडेक्स फ़ुल्डेन्सिस (मूल प्रति फ़ुल्डा में रखी है) में नीचे यह पाठ पद 34 और 35 के बिना सुधार या फ़ुटनोट के रूप में लिखा गया है। स्पष्ट है कि छठी शताब्दी के मध्य में प्रतिलिपिकार के पास इन पदों के बिना एक पाठ था।

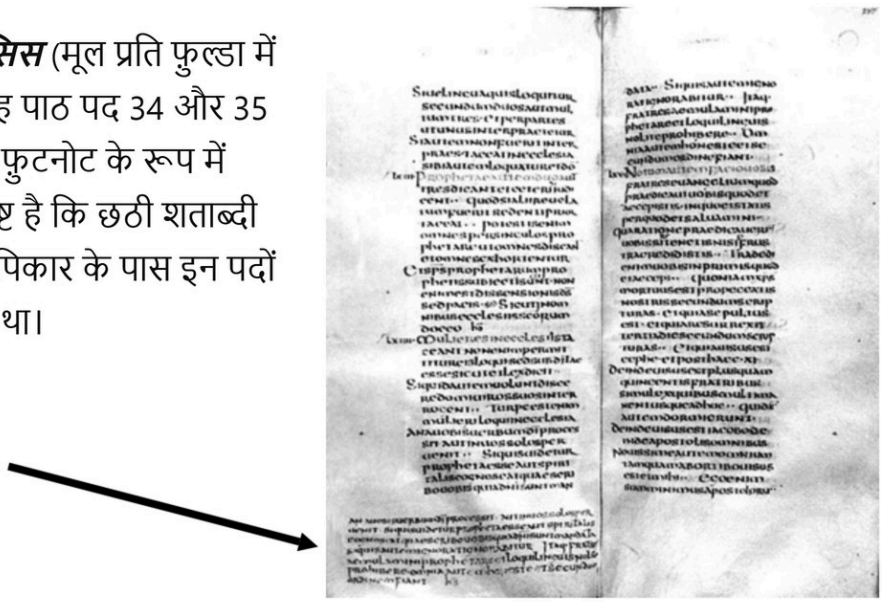

कोडेक्स फ़ुल्डेन्सिस (F) वल्गेट (Vulgata) की एक हस्तलिपि है, जिसमें नए नियम की 23 धर्मशास्त्रीय (कैनोनिकल) पुस्तकों का पाठ और साथ ही डायटेस्सरॉन (Diatessaron) और लौदीकियों की पत्री का पाठ है। यह नए नियम की सबसे पुरानी दिनांकित हस्तलिपियों में से एक है और नए नियम की एकमात्र प्रारंभिक हस्तलिपि है जिसके बारे में ज्ञात है कि उसे एक महत्वपूर्ण विद्वान, कापुआ के बिशप विक्टर (Victor von Capua) ने संपादित किया। यह वल्गेट के पाठ का दूसरा महत्वपूर्ण साक्षी है, और डायटेस्सरॉन के पूर्ण पाठ का सबसे महत्वपूर्ण और सबसे पुराना साक्षी। यह कोडेक्स 1 कुरिन्थियों 14:34-35 के पाठ की प्रामाणिकता पर चर्चा में एक महत्वपूर्ण, यदि सबसे महत्वपूर्ण नहीं, साक्ष्य है। इसे 541-546 के वर्षों में कापुआ में बिशप विक्टर के आदेश पर लिखा गया और उन्होंने स्वयं इसकी जाँच और सुधार किया। प्रकाशितवाक्य के अंत में 2 मई 546 की तिथि है, जो स्वयं विक्टर ने लिखी। विक्टर ने कोडेक्स के पाठ की दूसरी बार जाँच की, और इसलिए एक दूसरी तिथि भी है – 12 अप्रैल 547।

"प्रसिद्ध रोमन कैथोलिक विद्वान जोसेफ़ ए. फ़िट्ज़मायर (Joseph A. Fitzmyer) कहते हैं कि 'आज के अधिकांश व्याख्याकार' इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह पाठ [14:34-35] बाद का जोड़ है। पाठ-विदुषी किम हेन्स-आइट्ज़ेन (Kim Haines-Eitzen) यह बात 'आज लगभग सब विद्वानों' के बारे में कहती हैं। गॉर्डन फ़ी (Gordon Fee), जो संभवतः सबसे प्रतिष्ठित सुसमाचारवादी (इवैन्जेलिकल) पाठ-शोधकर्ता हैं, तर्क देते हैं कि ये पद पौलुस की पत्री में नहीं थे, बल्कि किसी हस्तलिपि के हाशिये पर जोड़े गए और बाद के प्रतिलिपिकारों द्वारा या तो पद 33 के बाद या पद 40 के बाद डाले गए। मेरी पुस्तक Man and Woman, One in Christ, 226-227, पचपन अध्ययनों का उल्लेख करती है जो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 1 कुरिन्थियों 14:34-35 पौलुस की मूल पत्री में नहीं था। पृष्ठ 227-53 पर सात बाहरी कारण और पृष्ठ 253-65 पर नौ भीतरी कारण दिए गए हैं कि यह पाठ पौलुस का नहीं है, और पृष्ठ 265-67 पर टिप्पणी (ग्लॉस) होने के विरुद्ध आपत्तियों का उत्तर दिया गया है। कुल मिलाकर, मेरी राय में पाठ-आलोचना के साक्ष्य दृढ़ता से इस पक्ष में हैं कि यह एक टिप्पणी (ग्लॉस) है, जो संभवतः ईसवी 197 से पहले किसी पाठक ने लिखी।"

अंतिम मूल्यांकन

मैं एक दूसरे लेखक, एंड्रयू बार्टलेट (Andrew Bartlett) को, जिन्होंने इस विषय पर बहुत गहन कार्य किया है, उनकी पुस्तक Men and Women in Christ से उद्धृत करता हूँ: "कुछ पाठकों को शायद यह लगे कि पद 34-35 को हटा देना बस बहुत सुविधाजनक है। यह समझ में आता है। हमें उचित ही यह सिखाया जाता है कि बाइबल से कठिन पाठों को हटाने के सुझावों के प्रति अत्यंत संशयी रहें। यह ज़ोर देना महत्वपूर्ण है कि यहाँ हमारा सामना अप्रामाणिकता के ऐसे तर्कों से नहीं है जो केवल भीतरी प्रमाणों पर आधारित हों। यदि इन पदों की समस्या केवल इस तथ्य तक सीमित होती कि वे अपने संदर्भ से मेल नहीं खाते, कि उनमें पुराने नियम की विषय-वस्तु के संबंध में एक स्पष्ट भूल है, और कि व्याख्या का कोई ऐसा समाधान नहीं मिला जो उन्हें संतोषजनक अर्थ दे, तो हम उन्हें पाठ में रहने देते, अपनी सीमाओं को स्वीकार करते और भविष्य में नए प्रकाश की आशा करते। यहाँ बाहरी संकेतों को भी समझाना होगा। ऐसा कैसे है कि ये शब्द अलग-अलग हस्तलिपियों में अलग-अलग स्थानों पर मिलते हैं? कुछ न कुछ गड़बड़ हुई है, पर क्या? जैसा हमने देखा, बाहरी प्रमाण की इस विशेषता का सबसे संभावित समाधान यह है कि पद 34-35 पौलुस के नहीं हैं, बल्कि हाशिये की एक प्रारंभिक टिप्पणी से आए हैं, जिसे मुख्य पाठ में ले लिया गया।

इसकी अतिरिक्त पुष्टि कोडेक्स फ़ुल्डेन्सिस (Codex Fuldensis) में बिशप विक्टर (Victor) की टिप्पणियों से होती है, जो एक ऐसे पाठ के अस्तित्व की ओर संकेत करती हैं जिसमें ये दोनों पद पूरी तरह अनुपस्थित हैं। और यदि कोडेक्स वैटिकनस (Codex Vaticanus) के प्रमाणों के बारे में पेन (Payne) का दृष्टिकोण सही है, तो यह एक और पुष्टि है। जब हम बाहरी और भीतरी प्रमाणों को एक साथ जोड़ते हैं, तो इन दोनों पदों को अस्वीकार करने के तर्क स्पष्ट हैं। उन्हें हटाना कोई वैचारिक चाल नहीं है; बात प्रमाणों के पीछे चलने की है। सिद्धांत रूप में यह दूसरे जोड़ों (जैसे मरकुस के अंत, यूहन्ना 5:3-4 या प्रेरितों के काम 24:6-7) को अस्वीकार करने से भिन्न नहीं है, जो पाठ में प्रकट हुए, कुछ समय तक हमारी बाइबलों में लिए गए और फिर हटा दिए गए, जब उपलब्ध प्रमाणों की जाँच इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वे संभवतः प्रामाणिक नहीं थे। कम से कम हमारी बाइबलों में एक फ़ुटनोट होना चाहिए, कुछ इस प्रकार: हस्तलिपियों के संकेत बताते हैं कि पद 34 और 35 बाद का एक जोड़ हो सकते हैं, जो पौलुस का नहीं है, और इसलिए उन्हें छोड़ देना चाहिए। बेहतर यह होगा कि पद 34-35 को तिरछे अक्षरों में छापा जाए या फ़ुटनोट में रखा जाए, साथ में इस स्पष्टीकरण के साथ कि हस्तलिपियों में विसंगतियों का स्वरूप यह निष्कर्ष निकालने देता है कि उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। 'यहोवा की व्यवस्था खरी है, वह प्राण को बहाल कर देती है' (भजन संहिता 19:7)। मैं इसे यहाँ प्रामाणिकता की कसौटी के रूप में प्रस्तावित नहीं कर रहा। परन्तु यदि कुछ पाठकों ने स्वयं को दोषी अनुभव किया है कि उनके प्राणों को 1 कुरिन्थियों 14:34-35 से अधिक ताज़गी नहीं मिली, तो अब वे शायद राहत की साँस ले सकते हैं: ये पद संभवतः बाइबल में हैं ही नहीं।"

मुझे यह अध्याय इस प्रकार समाप्त करने दीजिए: जब मैंने यह पुस्तक लिखी, तब मैं इस दृष्टिकोण को जानता था, परन्तु इस पाठ पर प्रश्न उठाने का साहस नहीं किया। परन्तु अब तथ्यों की स्थिति ऐसी है कि इन दोनों पदों को परमेश्वर का प्रेरित वचन समझना लगभग संभव नहीं रहा। इससे एक बहुत बड़ा अंतर पड़ता है। क्यों? क्योंकि सब स्पष्टीकरण-प्रयास (उद्धरण वाले मत को छोड़कर) इस बात पर विफल हो जाते हैं कि यह पूर्ण मौन की आज्ञा है। सब व्याख्याओं में स्पष्टीकरण के प्रयास इस माँग की स्पष्टता से टकराते हैं। परन्तु यह माँग पौलुस की नहीं है, बल्कि सांसारिक सोच के अनुरूप है। कितनी दुखद बात है! क्योंकि जो लोग स्त्रियों के पक्ष में खड़े होते हैं, उन पर नारीवाद और संसार के अनुरूप ढल जाने का आरोप लगाया जाता है। क्या ऐसा हो सकता है कि शत्रु, विरोधी और गड़बड़ी फैलाने वाला, बाइबल में कुछ ऐसा चुपके से घुसा देने में सफल हो गया, जिसके सब शताब्दियों में

कलीसिया की स्त्रियों और पूरी कलीसिया के लिए घातक परिणाम हुए? हम ऐसी दुखद स्थिति से कैसे बाहर निकल सकते हैं? यह झूठी धारणा आज तक कितनी गंभीर है?

यहाँ अंतिम रूप से स्पष्ट पक्ष लेना और तथ्यों का सामना करना आवश्यक है।

परमेश्वर हम पर अनुग्रह करे!

इस अध्याय के अंत में कुरिन्थियों के पाठ को पद 34 और 35 के बिना पढ़िए और देखिए कि वह इस रूप में कितना सुसंगत और अर्थपूर्ण है:

"क्योंकि तुम सब एक-एक करके भविष्यद्वाणी कर सकते हो, ताकि सब सीखें और सब को शान्ति मिले। और भविष्यद्वक्ताओं की आत्माएँ भविष्यद्वक्ताओं के अधीन रहती हैं। क्योंकि परमेश्वर अव्यवस्था का नहीं, परन्तु शान्ति का परमेश्वर है, जैसा पवित्र लोगों की सब सभाओं में है। या क्या परमेश्वर का वचन तुम में से निकला है? या क्या वह केवल तुम्हीं तक पहुँचा है? यदि कोई समझता है कि वह भविष्यद्वक्ता है या आत्मिक है, तो वह पहचान ले कि जो मैं तुम्हें लिखता हूँ, वह प्रभु की आज्ञा है। परन्तु यदि कोई अनजान है, तो अनजान ही रहे। इसलिए, मेरे भाइयो, भविष्यद्वाणी करने की लालसा रखो, और अन्य भाषाओं में बोलने से मना न करो। पर सब कुछ शालीनता से और क्रम से हो।" (1 कुरिन्थियों 14:31-33, 36-40)

यीशु की कलीसिया की सभाओं में स्त्रियों के लिए न कोई मौन की आज्ञा थी, न है! इस निष्कर्ष तक यूनानी भाषा के ज्ञान के बिना और उद्धरण वाले मत के बिना भी पहुँचा जा सकता है। क्या सचमुच ऐसा हो सकता है कि वह प्रेरित, जिसकी बहुत सी सहकर्मी स्त्रियाँ थीं, जिनके वह नाम लेता है, जिन पर वह भरोसा करता था, जिन्होंने सुसमाचार में साथ संघर्ष किया, उन्हें बोलने से मना कर दे?

अंत में मैं पूछता हूँ: इसमें सबसे अधिक रुचि किसकी है कि बहनें चुप रहें? कि मसीह की देह का आधा भाग मौन हो जाए? कि सभा में स्त्रियाँ पुरुषों की पूरक न बनें? वह पुराना साँप है, विरोधी और नाश करने वाला, झूठ का पिता और आरंभ से हत्यारा। केवल स्त्री के प्रति उसकी शत्रुता ही ऐसे अंधेपन का कारण हो सकती है। इसके लिए अगुवाई और शिक्षा में लगे पुरुषों को एक दिन उत्तरदायी ठहरना होगा।

Hans-Jörg Ronsdorf

आउग्सबुर्ग (Augsburg), 22 सितंबर 2023

टिप्पणियाँ

1. Kelly, W., Einführende Vorträge zum Neuen Testament, XV, Faithlife, Bellingham, WA 2022, 11.
2. Grant, F. W., The numerical Bible; being a revised translation of the Holy Scriptures with expository notes: arranged, divided, and briefly characterized according to the principles of their numerical structure: Acts to 2 Corinthians (Study Text), Loizeaux Brothers, Neptune, NJ 1901, 523.
3. Hole, F. B., Grundzüge des Neuen Testaments, Christliche Schriftenverbreitung, Hückeswagen 1989, 972–973.
4. MacDonald, W., Kommentar zum Neuen Testament, Christliche Literatur-Verbreitung, Bielefeld 2018, 7वाँ संस्करण, 761–762.
5. Strack, H. L. - Billerbeck, P., Kommentar zum Neuen Testament aus Talmud und Midrasch, C. H. Beck'sche Verlagsbuchhandlung Oskar Beck, München 1922–1926, खंड 3, 467.
6. Strack, H. L. - Billerbeck, P., Kommentar zum Neuen Testament aus Talmud und Midrasch, C. H. Beck'sche Verlagsbuchhandlung Oskar Beck, München 1922–1926, खंड 3, 469.

7. Henry, M., Matthew Henry's commentary on the whole Bible: complete and unabridged in one volume, Hendrickson, Peabody 1994, 2271.
8. Schlatter, A., Die Korintherbriefe: Ausgelegt für Bibelleser, VI, Schlatters Erläuterungen zum Neuen Testament, Evangelische Verlagsanstalt, Berlin 1954 (दूसरा संस्करण), 154–155.
9. Morris, L., 1 Corinthians: an introduction and commentary, VII, Tyndale New Testament Commentaries, InterVarsity Press, Downers Grove, IL 1985, 192–194.
10. Ciampa, R. E. - Rosner, B. S., "1 Corinthians", Commentary on the New Testament use of the Old Testament में, Baker Academic; Apollos, Grand Rapids, MI; Nottingham, UK 2007, 743.
11. परंपरागत दृष्टिकोण का एक गहन बचाव Archibald Robertson, Alfred Plummer. A Critical and Exegetical Commentary on the First Epistle of St Paul to the Corinthians. पूर्वोक्त, पृ. 324-328 में मिलता है, और – उद्धरण-सिद्धांत के विरुद्ध भी – Arthur Rowe. "Silence and the Christian Women of Corinth: An Examination of 1 Corinthians 14:33b-36". Communio viatorum (Ecumenical Institute of the Comenius Faculty, Prag) 33 (1990) 1-2: 41-84 में।
12. Daniel C. Arichea. "The Silence of Women in the Church". Bible Translator 46 (1995) 101-112, यहाँ पृ. 102-104।
13. कालक्रम के अनुसार 1 कुरिन्थियों 14:34-36 में उद्धरण-सिद्धांत के समर्थकों के रूप में – जहाँ तक मुझे ज्ञात है – इनका नाम लिया जाना चाहिए: Jessie Penn-Lewis. The Magna Charta of Woman. The Overcomer Book Room: Bournemouth (GB), 1919 (नीचे 1975 का पुनर्मुद्रण देखें); Katharine Bushnell. God's Word to Women. स्वयं प्रकाशित: Oakland (CA, USA), वर्ष अज्ञात (लगभग 1918); वही 1930, अनुच्छेद 189-215 Katharine Bushnell. 101 Questions Answered: A Woman's Catechism - God's Word to Women. Lowes Ltd.: Southport (GB), वर्ष अज्ञात (लगभग 1930; 72 पृ.)। पृ. 23-26; John A. Anderson. Women's Warfare and Ministry: What Saith the Scriptures? David Waldie: Stonehaven (GB), 1933. पृ. 20-26; Katharine Bushnell. Was sagt Gott der Frau. Berlin, 1936. लगभग 130 पृ.; Katharine Bushnell. The Badge of Guilt and Shame. Southport (GB) वर्ष अज्ञात; Ernestine von Trott zu Solz. Die Stellung der Frau nach der Bibel. Landheim Salem e. V.: Asendorf, वर्ष अज्ञात 47 पृ.। पृ. 33-37; J. C. Hurd. The Origin of I Corinthians. Seabury: New York, 1965. पृ. 186-195; Joyce Harper. Women and the Gospel. C. B. R. F. Occasional Paper 5. Christian Brethren Research Fellowship: Pinner (GB), 1974. पृ. 14-19+8-9; Jessie Penn-Lewis. The Magna Charta of Woman. Bethany House Publ.: Minneapolis, 1975 (1919 का पुनर्मुद्रण)। 103 पृ. 21-34; Walter C. Kaiser, Jr. "Paul, Women, and the Church". Worldwide Challenge 3 (1976) Sept: 9-12; Neal M. Flanagan, Edwina Hunter Snyder. "Did Paul put down women in 1Cor 14: 34-36?". Biblical Theology Bulletin (New York) 11 (1981) 10-12; David W. Odell-Scott. "Let the Women Speak in Church: An Egalitarian Interpretation of I Cor. 14.33b-36". Biblical Theology Bulletin 13 (1983) 90-93; C. H. Talbert. "Paul's Understanding of the Holy Spirit: The Evidence of 1 Corinthians 12-14". Perspectives in Religious Studies 11 (1984) 95-108, यहाँ पृ. 105-107; Chris Ukachukwu Manus. "The Subordination of the Women in the Church: 1 Co 14:33b-36 Reconsidered". Revue Africaine de Théologie 8 (1984) 16 (Oct) 183-195; David W. Odell-Scott. "In Defense of an Egalitarian Interpretation of 1 Cor 14.34-36". Biblical Theology Bulletin 17 (1987) 3: 100-103; Robert W. Allison. "Let Women be Silent in the Churches (1Cor. 14. 33b-36) What Did Paul Really Say, and What Did it Mean". Journal for the Study of the NT 32 (1988) 27-60; Gilbert Bilezikian. Beyond Sex Roles: A Guide for the Study of Female Roles in the Bible. Baker Book House: Grand Rapids (MI), ²1989. पृ. 144-153; Daniel C. Arichea. "The Silence of Women in the Church". Bible Translator 46 (1995) 101-112; उद्धरण-सिद्धांत को एक संभावना के रूप में विचार करते हैं: Jerome Murphy-O'Connor. "Interpolations in 1 Corinthians". Catholic Biblical Quarterly 48 (1986) 81-94, यहाँ पृ. 91।
14. Neal M. Flanagan, Edwina Hunter Snyder. "Did Paul put down women in 1Cor 14: 34-36?". पूर्वोक्त, पृ. 10+12।
15. Daniel C. Arichea. "The Silence of Women in the Church". पूर्वोक्त, पृ. 109 और Chris Ukachukwu Manus. "The Subordination of the Women in the Church: 1 Co 14:33b-36 Reconsidered". पूर्वोक्त, पृ. 189।
16. Robert W. Allison. "Let Women be Silent in the Churches (1Cor. 14. 33b-36)". पूर्वोक्त, पृ. 44-45। Archibald Robertson, Alfred Plummer. A Critical and Exegetical Commentary on the First Epistle of St Paul to the Corinthians. पूर्वोक्त, पृ. 325 और Daniel C. Arichea. "The Silence of Women in the Church". पूर्वोक्त भी पाठ को उत्पत्ति 3:16 से जोड़ते हैं, परन्तु यह मानकर चलते हैं कि पौलुस ने उत्पत्ति 3:16 को ऐसे समझा (या गलत समझा)।
17. Joyce Harper. Women and the Gospel. C. B. R. F. Occasional Paper 5. Christian Brethren Research Fellowship: Pinner (GB), 1974. पृ. 14-15; John A. Anderson. Women's Warfare and Ministry: What Saith the Scriptures? David Waldie: Stonehaven (GB), 1933. पृ. 20-26।
18. Joyce Harper. Women and the Gospel. पूर्वोक्त, पृ. 14 (मेगिल्ला (Megilla) से, तलमुद की एक पुस्तक)।
19. S. Aalen. "A Rabbinic Formula in I Cor. 14,34". पृ. 513-525, में: F. L. Cross (सं.)। Studia Evangelica II. Texte und Untersuchungen zur Geschichte der altchristlichen Literatur 87. Akademie-Verlag: (Ost-)Berlin, 1964।
20. Gilbert Bilezikian. Beyond Sex Roles: A Guide for the Study of Female Roles in the Bible. Baker Book House: Grand Rapids (MI), ²1989. पृ. 144-153।
21. वही, पृ. 145।

22. वही।
23. वही, पृ. 147।
24. वही, पृ. 149।
25. वही।
26. वही, पृ. 151।
27. वही, पृ. 248-249।
28. वही, पृ. 151-152।
29. वही, पृ. 248।
30. C. H. Talbert. “Paul’s Understanding of the Holy Spirit”. पूर्वोक्त, पृ. 105, “Montgomery translation of the New Testament, early in the century” का हवाला देते हुए, और साथ ही David W. Odell-Scott. “Let the Women Speak in Church”. पूर्वोक्त और Neal M. Flanagan, Edwina Hunter Snyder. “Did Paul put down women in 1Cor 14: 34-36?”. पूर्वोक्त का भी।
31. C. H. Talbert. “Paul’s Understanding of the Holy Spirit”. पूर्वोक्त, पृ. 106।
32. सबसे विस्तार से Gottfried Fitzer. ‘Das Weib schweige in der Gemeinde’: Über den unpaulinischen Charakter der mulier-taceat-Verse in 1. Korinther 14. Theologische Existenz Heute 110. C. Kaiser: München, 1963; सुसमाचारवादी (इवैन्जेलिकल) क्षेत्र में: Gordon D. Fee. The First Epistle to the Corinthians. पूर्वोक्त, पृ. 699-707 (इसके विरुद्ध D. A. Carson. “‘Silent in the Churches’: On the Role of Women in 1Corinthians 14:33b-36”. पृ. 140-153, में: John Piper, Wayne Grudem (सं.)। Recovering Biblical Manhood and Womanhood. Crossway Books: Wheaton (IL), 1991. पृ. 141-145); अन्य: Jerome Murphy-O’Connor. “Interpolations in 1 Corinthians”. Catholic Biblical Quarterly 48 (1986) 81-94, यहाँ पृ. 90-92; Elizabeth Schüssler Fiorenza. Zu ihrem Gedächtnis. Chr. Kaiser: München, Grünewald: Mainz, 1988. पृ. 287-291; G. W. Trompf. “On Attitudes Toward Women in Paul and Paulinist Literature: 1 Corinthians 11: 3-16 and Its Context”. The Catholic Biblical Quarterly 42 (1980) 196-215; Karl Hermann Schelkle. “‘Denn wie das Weib aus dem Mann ist, so auch der Mann aus dem Weib’ (1Kor 11,12): Zur Gleichberechtigung der Frau im Neuen Testament”. Diakonia 15 (1984) 85-90, यहाँ पृ. 87; Hans Conzelmann. Der erste Brief an die Korinther. Kritisch-exegetischer Kommentar über das Neue Testament 5. ^{12}1981 (नए संशोधन का ^{2}1981)। संबंधित स्थान पर; (Conzelmann के विरुद्ध मत रखते हैं: C. K. Barrett. A Commentary on The First Epistle to the Corinthians. A & C Black: London, 1968. पृ. 333 और Mary Evans. Women in the Bible. The Paternoster Press: Exeter, 1983. पृ. 95-96)।
33. पश्चिमी पाठ के सब महत्वपूर्ण साक्ष्यों में 1 कुरिन्थियों 14:34-35, 1 कुरिन्थियों 14:40 के बाद मिलता है, जिसे रूढ़िवादी सुसमाचारवादी (इवैन्जेलिकल) व्याख्याकार Gordon D. Fee. The First Epistle to the Corinthians. पूर्वोक्त, पृ. 699-707 के मत में भी केवल इस बात से समझाया जा सकता है कि वे बाद में जोड़े गए। पद 34-35 के देर से उत्पन्न होने के लिए पाठ-आलोचना के और कारण हाल में Philip B. Payne. “Fuldensis, Sigla for Variants in Vaticanus, and 1 Cor 14.34-5”. New Testament Studies 41 (1995) 240-262 बताते हैं; उससे इसी पत्रिका में उत्पन्न चर्चा भी तुलना करें, जैसे विरोधी पक्ष Curt Niccum. “The Voice of the Manuscripts on the Silence of Women: The External Evidence for 1Cor 14.34-5”. New Testament Studies 43 (1997) 242-255 में, और साथ ही D. W. Bryce. “As in All the Churches of the Saints”. Lutheran Theological Journal 31 (1997) 31-39 में भी।
34. Gottfried Fitzer. ‘Das Weib schweige in der Gemeinde’. पूर्वोक्त, पृ. 6-7; Gordon D. Fee. The First Epistle to the Corinthians. पूर्वोक्त, पृ. 699-701।
35. वही, पृ. 700।
36. Jerome Murphy-O’Connor. “Interpolations in 1 Corinthians”. Catholic Biblical Quarterly 48 (1986) 81-94, यहाँ पृ. 90-92; इसी प्रकार Jerome Murphy-O’Connor. 1 Corinthians. New Testament Message 10. M. Glazier: Wilmington (DE), 1979. पृ. 133 में।
37. ऐसा ही जैसे Robert W. Allison. “Let Women be Silent in the Churches (1Cor. 14. 33b-36): What Did Paul Really Say, and What Did it Mean”. Journal for the Study of the NT 32 (1988) 27-60, यहाँ पृ. 35-39।
38. Fee, G. D., The First Epistle to the Corinthians, edd. N. B. Stonehouse - F. F. Bruce - G. D. Fee - J. B. Green, The New International Commentary on the New Testament, William B. Eerdmans Publishing Company, Grand Rapids, MI; Cambridge, U.K. 2014, Revised Edition, 780.
39. Schnabel, E. J., Der erste Brief des Paulus an die Korinther, edd. G. Maier - H.-W. Neudorfer - R. Riesner - E. J. Schnabel, Historisch-Theologische Auslegung Neues Testament, SCM R. Brockhaus/Brunnen Verlag, Witten/Gießen 2018, चौथा संस्करण, 842–845.
40. तर्कशास्त्र और इतिहास-विज्ञान में मौन से निकाले गए निष्कर्ष को Argumentum e silentio (लातीनी) कहा जाता है। किसी तथ्य या घटना की अवास्तविकता इस बात से निकाली जाती है कि उसका उल्लेख किसी ऐसे संदर्भ में नहीं किया गया, जिसमें अन्यथा उसके उल्लेख की निश्चित अपेक्षा की जाती।